इकाई 17 काव्य वाचन एवं विश्लेषण : सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' और भवानी प्रसाद मिश्र

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 अज्ञेय की चयनित कविताओं का पाठ और विश्लेषण

17.2.1 अज्ञेय का कवि परिचय

17.2.2 'नदी के द्वीप' कविता का वाचन और विश्लेषण

17.2.3 'यह दीप अकेला' कविता का वाचन और विश्लेषण

17.2.4 'कलगी बाजरे की' कविता का वाचन और विश्लेषण

17.2.5 'सम्राज्ञी का नैवेद्य दान' कविता का वाचन और विश्लेषण

17.3 भवानी प्रसाद मिश्र चयनित कविताओं का पाठ और विश्लेषण

17.3.1 भवानी प्रसाद मिश्र का कवि परिचय

17.3.2 'गीत फरोश' कविता का वाचन और विश्लेषण

17.3.3 'सन्नाटा' कविता का वाचन और विश्लेषण

17.3.4 'फूल कमल के' कविता का वाचन और विश्लेषण

17.3.5 'कहीं नहीं बचे' कविता का वाचन और विश्लेषण

17.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई पढ़ने के बाद आप :

- अज्ञेय और भवानी प्रसाद मिश्र की कविताओं से परिचित हो सकेंगी/सकेंगे;
- अज्ञेय और भवानी प्रसाद मिश्र की कविताओं में प्रकृति के स्वरूप के बारे में बता सकेंगी/सकेंगे;
- इन कवियों की कविताओं में निहित चिंता और चेतनाओं की चर्चा कर सकेंगी/सकेंगे;
- उल्लिखित कवियों की कविताओं में निहित काव्य सौंदर्य को उजागर कर सकेंगी/सकेंगे;
- दोनों कवियों की भाषिक और शैलीगत विशेषताओं को उद्घाटित कर सकेंगी/सकेंगे और
- अज्ञेय और भवानी प्रसाद मिश्र की जीवन दृष्टि से परिचित हो सकेंगी/सकेंगे।

17.1 प्रस्तावना

अब तक आपने इस खंड की पिछली इकाइयों में प्रगतिशील कवि केदारनाथ अग्रवाल और नागार्जुन की कविताओं का रसास्वादन कर लिया होगा। साथ ही, आपने रामधारी सिंह 'दिनकर' और माखनलाल चतुर्वेदी की राष्ट्रीय और सांस्कृतिक धारा की कविताओं से परिचित हो चुके होंगे। यदि किन्ही कारणों से आपने इन कवियों को अब तक नहीं पढ़ा है तो पहले उन्हें पढ़ लें। फिर, इस इकाई में प्रस्तावित कविताओं को पढ़ते हैं तो हिंदी कविता के विकास को समझने में आपको कठिनाई नहीं होगी।

हिंदी कविता में 'तार सप्तक' के प्रकाशन के साथ–साथ बड़ा परिवर्तन लक्षित होता है। 'दूसरा सप्तक' तथा 'तीसरा सप्तक' का भी विशेष महत्व रहा। सप्तक परंपरा के कवि विभिन्न विचारधाराओं के हैं। उनकी कविताओं का स्वरूप भाषिक और संवेदना के स्तर पर भी एक दूसरे से भिन्न–भिन्न हैं।आइए, इस इकाई में हम अज्ञेय और भवानी प्रसाद मिश्र की चार–चार कविताओं के आधार पर उनकी संवेदना और शिल्प से परिचित होते हैं।

17.2 अज्ञेय की चयनित कविताओं का पाठ और विश्लेषण

अब हम अज्ञेय की चयनित कविताओं का अध्ययन करेंगे।

17.2.1 अज्ञेय का कवि परिचय

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' :

सच्चिदानंदहीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' (1911–1987) प्रयोगवाद और नयी कविता के श्रेष्ठ कवि हैं। वे एक बहुआयामी रचनाकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध, नाटक, आलोचना,जीवनी, यात्रा–वृत्तांत, संस्मरण, डायरी, संपादन, अनुवाद आदि साहित्य की विविध विधाओं में महत्वपूर्ण कृतियों की रचना की है। यहाँ आपको अज्ञेय के कवि रूप से परिचित कराया जाएगा। कवि के निम्नलिखित कविता संग्रह हैं– 'भग्नदूत' (1933), 'चिंता' (1942), 'इत्यलम' (1946), 'हरी घास पर क्षण भर'(1949), 'बावरा अहेरी' (1954), 'इंद्रधनुष रौंदे हुए ये' (1957), 'अरी ओ करुणा प्रभामय' (1959), 'आँगन के पार द्वार'(1961), 'कितनी नावों में कितनी बार' (1967), 'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ' (1970), 'पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ' (1974), 'महावृक्ष के नीचे' (1977) और 'नदी की बाँक पर छाया' (1981)। कवि की मृत्यु के पश्चात उसकी पंद्रह कविताओं का संग्रह 'मरुथल' भी प्रकाशित हुआ था। अज्ञेय की समस्त कविताएँ 'सदानीरा' के दो खंडों में संग्रहीत हैं। कवि का अंग्रेजी में भी एक कविता संग्रह 'प्रिजन डेज एंड अदर पोएम्स' (1941) उपलब्ध है। आधुनिकता, प्रेम, प्रकृति, अध्यात्म और रहस्य उनकी कविता के विशिष्ट पहलू हैं। प्रेम और प्रकृति से संबंधित कवि की कविताएँ सर्वाधिक सुंदर मानी जाती हैं। उनके संपूर्ण सृजन संसार में आधुनिक संवेदना व्याप्त होने के कारण उसमें आधुनिक मनुष्य की सृजनात्मक प्रतिक्रिया परिलक्षित होती है। उनकी प्रकृति संबंधी कविताओं में प्राकृतिक चित्रों की विशाल चित्रशाला है, प्रकृति प्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण है। हिंदी साहित्य को आधुनिकता की दिशा में नयी गति और नया मोड़ प्रदान करने में अज्ञेय का स्थायी महत्व बना रहेगा। अज्ञेय साहित्य अकादेमी और भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कारों से सम्मानित हैं।

आइए, अब हम अज्ञेय की चार प्रसिद्ध कविताओं 'नदी के द्वीप', 'यह दीप अकेला', कलगी बाजरे की' और 'सम्राज्ञी का नैवेद्य दान' का क्रमशः वाचन करें। प्रत्येक कविता की व्याख्या भी प्रस्तुत की

जा रही है ताकि आप कविता में निहित संवेदना को उद्घाटित कर पाएँगे। साथ ही, कवि की चिंता और चेतना से अवगत होने में आपको सुविधा होगी।

17.2.2 'नदी के द्वीप' का वाचन और व्याख्या

(1)

हम नदी के द्वीप हैं

हम नहीं कहते कि हम को छोड़कर स्रोतस्विनी बह जाये

वह हमें आकार देती है।

हमारे कोण, गलियाँ, अंतरीप, उभार, सैकत–कूल

सब गोलाइयाँ उसकी गढ़ी हैं।

माँ है वह। है, इसी से हम बने हैं।

(2)

किंतु हम हैं द्वीप।

हम धारा नहीं हैं।

स्थिर समर्पण है हमारा। हम सदा से द्वीप हैं स्रोतस्विनी के।

किंतु हम बहते नहीं हैं। क्योंकि बहना रेत होना है।

हम बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं।

पैर उखड़ेंगे। प्लवन होगा। ढहेंगे। सहेंगे।बह जाएँगे।

और फिर हम चूर्ण होकर भी कभी धारा बन सकते?

रेत बनकर हम सलिल को तनिक गंदला ही करेंगे।

अनुपयोगी ही बनाएँगे।

(3)

द्वीप हैं हम।

यह नहीं है शाप। यह अपनी नियति है।

हम नदी के पुत्र हैं। बैठे नदी के क्रोड़ में।

वह वृहद् भूखंड से हम को मिलाती है।

और वह भूखंड

अपना पितर है।

(4)

नदी, तुम बहती चलो।

भूखंड से जो दाय हमको मिला है, मिलता रहा है,

माँजती, संस्कार देती चलोः

यदि ऐसा कभी हो

तुम्हारे आह्लाद से या दूसरों के किसी स्वेराचार से –

अतिचार से–

तुम बढ़ो, प्लावन तुम्हारा घरघराता उठे–

यह स्रोतस्विनी ही कर्मनाशा कीर्तिनाशा घोर

काल– प्रवाहिनी बन जाय

तो हमें स्वीकार है वह भी। उसी में रेत होकर

फिर छनेंगे हम। जमेंगे हम। कहीं फिर पैर टेकेंगे।

कहीं फिर भी खड़ा होगा नये व्यक्तित्व का आकार।

मातः उसे फिर संस्कार तुम देना ।

————————

व्याख्याः

हम नदी के द्वीप ————————— इसी से बने हैं।

उपर्युक्त पद्यांश प्रयोगवाद के प्रवक्ता सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' की 'नदी के द्वीप' शीर्षक कविता से अवतरित है। इस कविता में नदी और द्वीप प्रतीकार्थ में प्रयुक्त हैं। नदी से समाज और द्वीप से व्यक्ति की प्रतीकात्मकता स्पष्ट होती है।

उद्धृत अंश से कवि का आशय यह है कि नदी में जो स्थिति द्वीप की होती है वही समाज में हमारी अर्थात् व्यक्ति की है। नदी का द्वीप नदी से निर्मित है। नदी द्वीप की जननी है। नदी में रहते हुए भी द्वीप नदी से अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है। इसी तरह व्यक्ति समाज का अंश होता है, लेकिन उसकी भी अपनी निजी पहचान होती है।

उपर्युक्त पंक्तियों में अपने अस्तित्व एवं रूप तथा आकार में आने का परिचय देते हुए द्वीप कहते है कि हम नदी के द्वीप हैं। हमारा जन्म इस नदी से और नदी में हुआ है। नदी ने ही हमें रूप आकार, पहचान आदि प्रदान किया है। हम इस नदी में रहते हैं। इसलिए, यह नहीं कहते कि नदी हमें अकेला छोड़कर बहती हुई चली जाए। यदि नदी ने हमें छोड़ दिया तो हमारी पहचान मिट जाएगी। हमारा अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। जब तक नदी है तब तक हमारा भी अस्तित्व है। इसे हम भली–भाँति समझते हैं। नदी हमारी माँ है। हमें धारण करने वाली अर्थात् धात्री है। इसी ने हमें रूप और आकार प्रदान किया है। जल की धारा में बहने वाले कंकड़, मिट्टी, बालू, पत्थर आदि को एकत्रित करके नदी ने हमारा निर्माण किया है। हमारे कोण,गलियाँ, अंतरीप, उभार, रेतीला किनारा, सारी गोलाइयाँ सभी नदी की देन हैं। कहने का आशय यह है कि नदी समाज का प्रतीक है। द्वीप व्यक्ति का प्रतीक है। समाज में व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व एवं महत्व है पर उसे समाज

से अलग कर नहीं देखा जाना चाहिए। जैसे नदी से द्वीप का निर्माण होता है ठीक वैसे ही व्यक्ति का निर्माण समाज से होता है। व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व की रक्षा करते हुए समाज के प्रति समर्पित होना चाहिए। आगे आप 'यह दीप अकेला' कविता में भी इस भावबोध से परिचित होंगे।समाज में हमारा अस्तित्व नदी के छोटे–छोटे द्वीपों की भाँति है। नदी और द्वीपों के बीच माता–पुत्र का संबंध जोड़कर कवि ने इसे आत्मीय बना दिया है। द्वीप के लिए नदी की आवश्यकता और उपयोगिता असंदिग्ध है। इसी तरह व्यक्ति के संदर्भ में समाज की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

किंतु हम हैं द्वीप ———————— अनुपयोगी ही बनाएँगे ।

उपर्युक्त काव्य पंक्तियाँ अज्ञेय की बहुचर्चित कविता 'नदी के द्वीप' से अवतरित हैं। कवि ने मानव के व्यक्तित्व को नदी का द्वीप स्वीकार किया है जबकि नदी समष्टि चेतना का प्रतीक है। द्वीप का व्यक्तित्व धारा से अलग है। नदी का द्वीप नदी में रहते हुए भी अपना व्यक्तित्व बनाए रखता है। वह रेत बनकर नदी को गंदा नहीं करना चाहता। प्रतीकात्मक शैली में कवि ने व्यक्ति को महत्व देते हुए समष्टि चेतना के लिए उसे जरूरी माना है। व्यक्ति की अपनी महत्ता समाज में होती ही है। लेकिन समाज के हित हेतु उसे अपना अलग अस्तित्व बनाए रखना भी आवश्यक है।

द्वीप कहते हैं –हम नदी के द्वीप हैं। हमारा अस्तित्व धारा से अलग है। हम नदी में से उत्पन्न होते हैं। नदी में रहते हैं। फिर भी हमारी अलग सत्ता बनी रहती है। बहती हुई धारा कभी–कभी हमारी सत्ता को पूरी तरह समाप्त भी कर देती है। उस धारा का अस्तित्व भी नदी से है। नदी के बिना धारा की कभी कल्पना नहीं की जा सकती है। धारा पूर्णतः नदी के प्रति समर्पित है। लेकिन हम अपनी व्यक्तित्व चेतना को बनाए रखना चाहते हैं। इन पंक्तियों का आशय है कि व्यक्ति समाज की इकाई है। समाज में रहते हुए भी उसकी व्यक्तिगत सत्ता सुरक्षित रह सकती है। यह ठीक है कि द्वीप नदी का अंग है, नदी के प्रति समर्पित भी। लेकिन प्रवाह में पड़कर अपने अस्तित्व को खोना नहीं चाहता। यदि वह प्रवाह की चपेट में आ जाता है तो उसका अस्तित्व मिट जाएगा। उसके पैर उखड़ जाएँगे। स्थिरता नष्ट हो जाएगी। उस भयंकर प्रवाह में पड़कर वह कहीं का नहीं रह सकेगा। लेकिन इतना निश्चित है कि अपने को पूरी तरह मिटाकर भी वह धारा नहीं बन सकता। वह रेत बन जाएगा। रेत बन जाने से धारा को गंदला ही करेगा। उसे अनुपयोगी बनाएगा। इसीलिए वह अपनी व्यष्टि चेतना को बनाए रखने में विश्वास करता है।

द्वीप अपने रूप और आकार में ही नदी की शोभा बढ़ाता है। उसके समान गतिशील होने का मतलब अपनी पहचान को मिटाना है। अतः हमारा भी कर्तव्य है कि हम समाज और देश की धारा को बिना गंदला किए अपने अस्तित्व को कायम रखते हुए समाज और देश के हित के बारे में सोचें और काम करें।

द्वीप हैं हम ————————— और वह भूखंड अपना पितर है।

उपर्युक्त अंश हिंदी के बहुआयामी साहित्यकार सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' के 'हरी घास पर क्षण भर' संग्रह की 'नदी के द्वीप' से उद्धृत है। इस अंश में कवि ने नदी और वृहद् भूखंड के पुत्र के रूप में द्वीप को प्रस्तुत करते हुए प्रतीकात्मक रूप में व्यक्ति का देश और विश्व के साथ आत्मीय संबंध पर प्रकाश डाला है।

समाज में व्यक्ति की स्थिति को कवि ने नदी में द्वीप के प्रतीक से अभिव्यक्त किया है। द्वीप होना अर्थात् स्वतंत्र सत्ता का होना अभिशाप नहीं, बल्कि यह हमारी नियति है। समाज के अंग के रूप में व्यक्ति का महत्व होता ही है। इस परिचय से वह समाज से अलग नहीं होता है। समाज से अलग होने का मतलब है कि बिना पहचान का हो जाना जिसका कोई महत्व नहीं होता है।

कवि का कहना है कि नदी का द्वीप होना अभिशाप नहीं अपितु नियति है। नियति के रूप में यह द्वीप का सौभाग्य है क्योंकि समाज से अलग होकर अस्तित्व महत्वहीन हो जाता है। द्वीपों का मानना है कि यह नदी हमारी माता है और हम उसके पुत्र। नदी ने ही हमें अपनी कोख से जन्म दिया है तथा हम उसकी गोद में उसी तरह बैठे हुए हैं जैसे माँ की गोद में शिशु कहना न होगा कि माता–पुत्र के संबंध की कोई तुलना नहीं है। यह सर्वाधिक आत्मीय और स्नेहपूर्ण होता है। शिशु का लालन–पालन माता करती है और उसे पिता से मिलाती है। वृहद् भूखंड द्वीपों के पिता हैं। ध्यान दिया जाना चाहिए कि द्वीप भूखंड का एक छोटा सा अंश होता है। इसलिए वे वृहद् भूखंड को अपना पिता मानते हैं।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज से अलग उसके अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती है। उसकी गति–प्रकृति समाज द्वारा परिचालित होती है। समाज का वह आजीवन उऋण रहता है। व्यक्ति और समाज का संबंध माता–पुत्र के रिश्ते की तरह काम्य है। 'वृहद् भूखंड' यानी राष्ट्र और विश्व के प्रति भी व्यक्ति की भावना द्वीपों की तरह बनी रहनी चाहिए।

नदी तुम बहती चलो ————————— फिर संस्कार तुम देना।

उल्लेख किया जा चुका है कि द्वीपों का निर्माण नदी ने किया है। उन्हें आकार देनेवाली, जन्म देनेवाली, पालन करनेवाली माता नदी ही है। द्वीप नदी में होकर भी नदी नहीं हैं। नदी से अलग हैं। कुछ मायने में विलक्षण भी। नदी के प्रवाह में वे अपने अस्तित्व की रक्षा किए खड़े हैं।

कवि द्वीपों के बहाने नदी यानी समष्टि के प्रति संबोधित करते हुए कहता है– हे नदी ! तुम माँ हो। तुमने ही द्वीपों को जन्म और आकार दिया है। तुम निरंतर बहती रहो। तुम्हारी गति कभी अवरुद्ध न हो। हम जल की धारा नहीं हैं, द्वीप हैं। पृथ्वी से जो अंश हमें भूखंड के रूप में मिला है, उसकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य है। इसलिए हम अपनी व्यष्टि चेतना को बनाए रखना चाहते हैं।

नदी अपने पुत्र द्वीपों का निरंतर संस्कार करती आ रही है। यदि कभी ऐसा हो कि प्लावन आ जाए, किसी के स्वेच्छाचार, अत्याचार के चलते अतिवाद का परिणाम उत्पन्न हो जाए तो निर्मल जलधारा वाली नदी को कर्मनाशा और कीर्तिनाशा बनकर विकराल और प्रबल रूप धारण करना पड़े तो द्वीपों को वह स्वीकार होगा। भले ही उस प्लावन से हम रेत बन जाएँ लेकिन हमें पूर्ण विश्वास है कि हम फिर कहीं अपने पैरों पर खड़े हो जाएँगे और बाढ़ का प्रकोप घटते ही फिर कहीं जम जाएँगे। और इसी क्रम में हमें नया रूप मिलेगा। नया व्यक्तित्व साकार हो उठेगा। हमारा आग्रह है कि माता, तुम हमारा पुनः संस्कार करना। व्यष्टि चेतना को बनाए रखने के समर्थन के रूप में यहाँ अस्तित्ववाद की अभिव्यंजना हुई है।

हमारे अस्तित्व के प्रदाता के लिए हमारा संपूर्ण अस्तित्व समर्पित होना चाहिए। ध्यातव्य है कि अस्तित्व समाहित होकर भी समाप्त नहीं हो जाता है। समय और काल के अनंत प्रवाह में नदी के द्वीपों की तरह अस्तित्व भी बनता– बिगड़ता रहता है। यही क्रम अनंत काल से चला आ रहा है। वाह्य अस्तित्व भले ही मिट जाए लेकिन आंतरिक व्यक्तित्व फिर–फिर बनता रहता है। मानव सभ्यता और संस्कृति पुनः–पुनः उसे संस्कार प्रदान करती रहती है। यह जीवन की अनवरत चलने वाली कहानी है।

17.2.3 'यह दीप अकेला' कविता का वाचन और विश्लेषण

यह दीप अकेला स्नेहभरा

है गर्वभरा, मदमाता, पर

इसको भी पंक्ति को दे दो।

यह जन है : गाता गीत जिन्हें फिर और कौन गायेगा ?

पनडुब्बा : ये मोती सच्चे फिर कौन कृती लायेगा ?

यह समिधाः ऐसी आग हठीला बिरला सुलगायेगा।

यह अद्वितीयः यह मेरा : यह मैं स्वयं विसर्जित :

यह द्वीप, अकेला, स्नेहभरा,

है गर्वभरा मदमाता, पर

इसको भी पंक्ति को दे दो।

यह मधु है : स्वयं काल की मौना का युग–संचय,

यह गोरस : जीवन–कामधेनु का अमृत –पूत पय,

यह अंकुर : फोड़ धारा को रवि को ताकता निर्भय,

यह प्रकृत, स्वयंभू, ब्रह्मअयुतः

इसको भी शक्ति को दे दो।

यह दीप, अकेला, स्नेहभरा,

है गर्वभरा मदमाता, पर

इसको भी पंक्ति को दे दो।

यह वह विश्वास, नहीं जो अपनी लघुता में भी काँपा,

यह पीड़ा, जिसकी गहराई को स्वयं उसी ने नापा;

कुत्सा, अपमान,अवज्ञा के धुँधुआते कड़वे तम में

यह सदा–द्रवित, चिर–जागरूक, अनुरक्त नेत्र,

उल्लंब– बाहु, यह चिर–अखंड अपनापा।

जिज्ञासु, प्रबुद्ध,सदा श्रद्धामय

इसको भी भक्ति को दे दो :

यह दीप, अकेला, स्नेहभरा

है गर्वभरा मदामाता, पर

इसको भी पंक्ति को दे दो।

व्याख्या :

यह दीप अकेला स्नेहभरा ———————— इसको भी पंक्ति को दे दो।

ऊपर लिखित अवतरण प्रयोगवाद और नयी कविता के शीर्षस्थ कवि सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' की बहुचर्चित कविता यह दीप अकेला' से अवतरित किया गया है। अज्ञेय एक मनोविश्लेषणवादी कवि के रूप में भी जाने जा सकते हैं। उन्होंने अपनी कविताओं में मानव मन की कुंठाओं और अभीप्साओं को भी चित्रित किया है। इस कवितांश में व्यक्ति और समाज के अंतरसंबंध को रेखांकित किया है।

प्रस्तुत अंश में कवि का यह कहना है कि एक अकेला दीपक तेल से भरा हुआ लौ के साथ जलता है और वह जलते हुए मदमाता रहते हुए अपने इर्द–गिर्द के अंधकार को दूर करता है। इसी तरह मनुष्य अकेला होने पर भी उसे पता होता है कि उसमें अंतर्निहित शक्तियाँ मौजूद हैं, सामर्थ्य है। अपनी शक्ति और सामर्थ्य पर उसे गर्व होता है। ऐसी स्थिति में वह इठलाता– इतराता रहता है। लेकिन उसके गुणों से दूसरों का उपकार तब तक नहीं हो सकता है जब तक कि वह अकेला हो। इसलिए कवि कहता है कि यदि अकेले दीपक को पंक्ति में रख दिया जाए तो उसका प्रकाश पंक्ति के दीपकों के प्रकाश के साथ मिलकर व्यापक अंधकार को दूर करने में सफल हो सकता है। मनुष्य की शक्ति में भी बढ़ोतरी तब होती है जब उसे समष्टि के साथ स्थानित कर दिया जाता है। इससे पूरे समाज को लाभ मिलेगा। व्यक्ति अपने गुणों और प्रतिभा का समष्टि के हितों के लिए उपयोग करता है तो स्वतः वह समाज से जुड़ जाता है। उसके जुड़ाव से समाज को लाभ तो मिलता ही है, व्यक्ति का जीवन भी सार्थक समझा जाता है। समाज की प्रगति और उसके विकास में व्यक्ति का यह योगदान बड़े महत्व का समझा जाता है। यह वह व्यक्ति है जो जनकल्याण और देशहित के गीत गाता है। यदि उसे समाज में शामिल नहीं किया गया तो मधुर गीत कौन गाएगा क्योंकि गीत की सार्थकता तभी है जब उसे कोई गानेवाला हो। यह वह गोताखोर है जो हृदयरूपी समुद्र में डुबकी लगाकर कठोर साधना के पश्चात रचना रूपी मोती खोज कर लाता है। यदि उसे समाज से अलग–थलग रखा जाए तो सुंदर सृजन भला कौन करेगा जो अनमोल मोती के रूप में साहित्य और समाज की शोभा का विस्तार करेगा? यह यज्ञ या हवन की लकड़ी (समिधा) के समान है जो स्वयं सुलगकर वातावरण को सुगंधित और पावन बनाती है। इस चेतनारूपी अग्नि को कोई विरला,हठीला ही सुलगा सकता है जिससे समाज का कल्याण होता है। कवि ने दीपक के प्रतीक के लिए जन, पनडुब्बा तथा समिधा का चयन किया है जो व्यक्ति की विशिष्टता के द्योतक हैं तथा सामूहिकता की पूर्णता के लिए सहायक हैं।

यह मधु है ———————— इसे भी पंक्ति को दे दो।

यह पद्यखंड अज्ञेय की कविता 'यह दीप अकेला' का दूसरा पद है। कवि ने दीपक अर्थात् व्यक्ति के लिए मधु, गोरस और अंकुर के प्रतीकों के माध्यम से अपने विचार को पुष्ट किया है। इन पंक्तियों में कवि ने अन्योक्ति के सहारे व्यक्ति के महत्व को रेखांकित किया है।

यह दीप अर्थात् एकाकी जन (व्यक्ति) जो सदियों से अपने में ज्ञान, विज्ञान, कला, कौशल आदि को संजो कर, तमाम भावों को संजोकर अपने में अनेक मधुर भावों का संचय करता है।यह एकाकी जन का गुण गोरस है जो वास्तव में कामधेनु के समान है। इसमें कामधेनु के समान अमृत प्रदान करने की शक्ति निहित है। यह जीवनरूपी कामधेनु की उस गोरस के समान है जो अमृत प्रदान करता

है। यह एक विशेष अंकुर के समान है जो पृथ्वी के वक्ष स्थल को चीरकर सूर्य की ओर अनिमेष नयनों से निर्भय होकर देखता रहता है।इसमें जीने की अद्भुत क्षमता है। प्रबल जिजीविषा तो है ही। यह स्वयं प्रकृति और ब्रह्म स्वरूप है किंतु इसका पूर्ण विकास नहीं हुआ है। एकाकी निर्जन में व्याप्त है। इसे विशिष्ट शक्ति प्रदान करना परम आवश्यक है। अतः इसे भी पंक्ति में रखा जाए ताकि इसमें छिपे समस्त गुण विकसित हो सकें। इससे समाज लाभान्वित होगा।

व्यक्ति और समाज एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों के समरसतापूर्ण सह–अस्तित्व से देश अथवा राष्ट्र का चहुमुखी विकास संभव होता है। इसलिए व्यक्ति रूपी शक्ति के ऊर्जावान कणों को पंक्ति अर्थात् समाज से जोड़ना अति आवश्यक है।

यह वह विश्वास नहीं ———————— इसको भी पंक्ति को दे दो।

उपर्युक्त पंक्तियाँ 'यह दीप अकेला' शीर्षक कविता से ली गई हैं। इस कविता के कवि अज्ञेय हैं। इन पंक्तियों में कवि ने दीप को व्यंजित किया है।

यह वह व्यक्ति है जो उपकारी है, स्नेह से भरा है और अपने लघु स्वरूप से भयभीत नहीं है। बावजूद इसके वह अपने व्यक्तित्व को विशालता प्रदान करते हुए अपने सत्कर्मों के प्रति समर्पित होता है। जिस प्रकार दीपक अपने में अग्नि धारण किए हुए होता है और स्वयं को जलाने का दुःख वह अच्छी तरह जानता है। फिर भी वह स्नेह से भरा है और स्वयं जलकर दूसरों को प्रकाशित करता है। दुनिया के अंधकार को दूर करता है। वह सदैव जागरूक और सावधान रहता है कि सबको समान रूप से समान प्रेम भाव से प्रकाशवान करे। ऐसा मनुष्य जो जिज्ञासु प्रवृत्ति का है, जिसमें स्नेह है और जो ज्ञानवान है, श्रद्धा से परिपूर्ण है वह भी दीप की भाँति होता है। ऐसा व्यक्ति जब समाज से जुड़ता है तो वह समाज को धन्य कर देता है। लघु मानव अपने लघु स्वरूप से घबराता नहीं है। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अनुकूल आचरण करता है। दूसरे शब्दों में कहें तो प्रतिकूलता को अनुकूलता में तब्दील कर देता है।

जिस प्रकार दीपक स्वयं जलकर तकलीफें सहते हुए भी स्नेह से भरपूर होता है और रौशन करता है ठीक उसी तरह मनुष्य ज्ञान का प्रकाश फैलाता रहता है। जब कभी समाज में निंदा, अपमान, घृणा, अनादर, उपेक्षा आदि के कारण अंधकार व्याप्त हो जाता है तो दीप रूपी मनुष्य अपने प्रकाश रूपी ज्ञान से अंधकार रूपी अज्ञानता को दूर करता है। कठिन और प्रतिकूल परिस्थितियों के समक्ष वह घुटने नहीं टेकता बल्कि उसे अनुकूल वातावरण में बदल देता है। विपरीत परिस्थितियों में भी वह करुणामय, द्रवित होकर जागरूकता का परिचय देते हुए सभी को अनुरागभरे नयनों से देखता है। अर्थात् उसके मन में सबके प्रति अनुराग और दया भाव बना रहता है। उसका आत्मविश्वास डिगता नहीं है। स्वयं अपनी पीड़ा का साक्षी बनकर दूसरों के हितार्थ अपनी बाहुएँ फैलाए रहता है। उन हाथों में अपनापा भरा रहता है। वह दूसरों को आत्मीयता से भर देता है। ऐसा मनुष्य श्रद्धावान होता है। अपने समय के अनुकूल कर्म के माध्यम से समाज का उत्थान करता है। ऐसे दीप रूपी व्यक्ति को पंक्तिरूपी समाज के विकास हेतु समर्पित करना श्रेयस्कर है। इससे उसका जीवन सार्थक हो जाएगा। इसीलिए उसे भक्ति को देना राष्ट्र हित के लिए है।

इस कविता में व्यष्टि से समष्टि के मानवीय संबंध को भी कवि ने उजागर किया है। यहाँ लघु मानव की प्रतिष्ठा भी स्थापित है।

आपने ध्यान दिया होगा कि 'यह दीप अकेला' कविता में कवि अज्ञेय ने प्रतीकों के माध्यम से अपने विचार की पुष्टि की है। व्यक्ति और समाज के अन्योनाश्रित संबंध को कविता में महत्व दिया गया है। कवि का मानना है कि व्यष्टि और समष्टि के समन्वय से ही विकास संभव होता है।

इस कविता में लघु मानव की प्रतिष्ठा सफलतापूर्वक की गई है। कविता की भाषा प्रतीकात्मक है। गंभीर विचार को कविता के साँचे में ढालने का सफल प्रयास हुआ है। इसलिए संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दों की बहुलता परिलक्षित होती है। अज्ञेय की सर्वाधिक प्रसिद्ध रचनाओं में से 'यह दीप अकेला' शीर्षक कविता का स्थान उल्लेखनीय है।

17.2.4 'कलगी बाजरे की' कविता का वाचन और विश्लेषण

हरी बिछली घास।

डोलती कलगी छरहरी बाजरे की।

अगर मैं तुम को

ललाती साँझ के नभ की अकेली तारिका

अब नहीं कहता,

या शरद के भोर की नीहार–न्हायी कूँई

टटकी कली चंपे की

वगैरह, तो

नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या कि सूना है

या कि मेरा प्यार मैला है।

बल्कि केवल यही :

ये उपमान मैले हो गए हैं।

देवता इन प्रतीकों को कर गये हैं कूच।

कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।

मगर क्या तुम

नहीं पहचान पाओगी :

तुम्हारे रूप के –

तुम हो, निकट हो, इसी जादू के –

निजी किस सहज, गहरे बोध से,

किस प्यार से मैं कह रहा हूँ–

अगर मैं यह कहूँ–

बिछली घास हो तुम

लहलहाती हवा में कलगी छरहरी बाजरे की?

आज हम शहरातियों को

पालतू मालंच पर सँवरी जूही के फूल से

सृष्टि के विस्तार का–ऐश्वर्य का–

औदार्य का–

कहीं सच्चा, कहीं प्यारा

एक प्रतीक

बिछली घास है,

या शरद की साँझ के सूने गगन की पीठिका पर

डोलती कलगी अकेली बाजरे की।

और सचमुच, इन्हें जब– जब देखता हूँ

यह खुला वीरान संसृति का घना हो सिमट आता है–

और मैं एकांत होता हूँ

समर्पित।

शब्द जादू है–

मगर क्या यह समर्पण कुछ नहीं ?

व्याख्या:

हरी बिछली घास ———————— मुलम्मा छूट जाता है।

उपर्युक्त पंक्तियाँ प्रयोगधर्मी कवि अज्ञेय की 'कलगी बाजरे की' शीर्षक कविता से अवतरित हैं। यह रचना कवि के 'हरी घास पर क्षण भर' कविता संग्रह में संकलित है। इस कविता के माध्यम से कवि ने काव्य के क्षेत्र में सर्वथा नए प्रतीकों और उपमानों के संधान और प्रयोग पर बल दिया है।

पुराने और पारंपरिक उपमान अपनी महत्ता और अर्थवत्ता खोने लगते हैं। युग संदर्भ में उनकी व्यापकता भी संकुचित प्रतीत होने लगती है। कवि अपनी प्रेयसी की तुलना पुराने उपमानों के बदले कलगी बाजरे की या हरी बिछली घास से करता है। इससे कवि को अपना प्रेम कहीं अधिक व्यापक प्रतीत होता है।

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि अपनी प्रेमिका की तुलना तारा, कुमुदिनी अथवा चंपे की कली जैसे पुराने उपमानों को छोड़कर चिकनी हरी घास और बाजरे की कली से करता है। उसके अनुसार हरी घास और बाजरा प्रेयसी की सुंदरता के अधिक निकट है। ये दोनों शहरी लोगों के लिए जुही के फुलों से भी अधिक महत्वपूर्ण नहीं हो सकते हैं। कवि इन दोनों की सादगी भरी शोभा से इतना प्रभावित है कि वह इसके माध्यम से सारी सृष्टि को अपने निकट महसूस करता है। वह प्रेमिका को संबोधित करते हुए कहता है कि यदि मैं तुम्हें लालिमा से भरपूर शाम को आकाश में चमकने वाली

अकेली तारिका नहीं कहता अथवा शरद ऋतु के भोर की कुहरे से ढँकी कुमुदिनी नहीं कहता हूँ तो इसका अर्थ यह नहीं कि मेरे हृदय में प्रेम की गहराई नहीं, भावना या संवेदना से शून्य हूँ। तुम्हारे प्रति मेरे प्रेम में किसी प्रकार की कोई मलिनता या दुर्भावना नहीं है बल्कि इसका कारण यह है कि सदियों से प्रचलित ये पारंपरिक उपमान बेहद पुराने हो चुके हैं। बासी हो गए हैं। देवता भी इन प्रतीकों को कूच कर चुके हैं। इनकी अंतर्निहित शक्ति फीकी पड़ चुकी है। परिवर्तित समय में इनसे अर्थ की अभिव्यक्ति कमजोर तरीके से अथवा असफल ढंग से ही हो पाती है। ये प्रतीक और उपमान घिस चुके हैं। इनका उपयोग बार–बार होने के कारण ये शक्तिहीन हो चुके हैं। जिस प्रकार बासन को अधिक घिसने से वह पुराना पड़ जाता है, उसकी चमक बेहद फीकी पड़ जाती है, बिना कलई का बर्तन निष्प्रभ हो जाता है ठीक वैसी ही स्थिति पारंपरिक उपमानों की होती है। तारिका का प्रकाश, उजास और उसकी अलौकिकता, कुमुदिनी की निर्मलता, चम्पे की मादकता पुराने, जूठे, बासी और प्रभावहीन हो गए हैं। इसके विपरीत नए उपमानों के प्रयोग हों तो उनमें ताजगी, नवीनता और मौलिकता होंगी। इसलिए प्रयोगधर्मी कवि अपनी कविता में नए नए प्रतीकों और उपमानों का प्रयोग करता है।

मगर क्या तुम ———————— कलगी, छरहरी बाजरे की ?

कवि ने अनछुए और सर्वथा नवीन उपमानों का प्रयोग किया है। पुराने और पारंपरिक उपमानों की तुलना मे कवि द्वारा प्रयुक्त उपमान अधिक अर्थव्यंजक और उद्देश्यधर्मी हैं। हो सकता है कि ये उपमान अपनी नवीनता के कारण थोड़े अटपटे लगें, लेकिन उद्देश्य की सिद्धि में कवि को अचूक प्रतीत होते हैं।

इसलिए कवि अपनी प्रियतमा से कहता है कि क्या इन नए उपमानों के प्रयोग से तुम्हारे रूप सौंदर्य का बखान करूँ तो क्या तुम मेरी भावनाओं को नहीं समझ सकोगी? क्या इनके प्रयोग से तुम अपने आपको समझ नहीं पाओगी? मेरे लिए तो तुम्हारा नैसर्गिक सौंदर्य इन प्रतीकों–उपमानों के अधिक निकट जान पड़ता है। इसलिए इन नवीन और ताजे–टटके उपमानों से तुम्हें उपमित करने में मुझे कुछ अनुचित प्रतीत नहीं होता है। बड़े ही सहज भाव से अपने हृदय की अतल गहराई से तुम्हारे प्रेम से अभिभूत हो अत्यधिक जुड़ाव के साथ यह कह रहा हूँ कि तुम हरी बिछली घास हो अर्थात् जिस प्रकार की फिसलन, चिकनाई और हरियाली हरी घास में होती है, उसी तरह तुम्हारे रूप–लावण्य की सुगढ़ देह का इससे अच्छा उपमान नहीं हो सकता। हवा में डोलती छरहरी, मुलायम, पतली बाजरे की कलगी तुम्हारे अल्हड़पन और मस्ती का परिचायक हो जाता है। कवि का कहना है कि किस भावबोध से ये नए उपमान रचे गए हैं, उन्हें केवल तुम ही समझ सकती हो।

आज इन शहरातियों को ———————— यह समर्पण कुछ नहीं है ?

उपर्युक्त काव्य पंक्तियों के माध्यम से कवि अज्ञेय ने नए उपमानों के महत्व और औचित्य पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि हरी बिछली घास बिल्कुल नया उपमान है। लेकिन यह उपमान नारी की कोमलता, सहजता और ताजगी के अहसास को व्यक्त कर्ता है। इसमें शुष्कता नहीं, अपितु एक आर्द्रता, एक नमी है। साथ ही, सौंदर्य की व्यापकता भी। इन पंक्तियों में कवि घास और बाजरे को शहरी सभ्यता और पूरी सृष्टि से जोड़कर देखता है। शहर में रहने वालों के लिए अपने घरेलू बगीचे पर साज–संवार कर उगाए गाए जुही के फूल से उस ऐश्वर्य, सच्चाई, औदार्य और सृष्टि के विस्तार का बोध नहीं हो सकता जो 'हरी बिछली घास' अथवा शरद ऋतु की सांध्यबेला में आकाश की शून्य पीठिका पर लाहलहाते बाजरे की कलगी में है। भाव यह है कि चिकनी घास शहर में रहनेवालों के लिए इस संसार की विशालता, समृद्धि और विस्तार का प्रतीक है। शहर के निवासी के अनुसार जुही के फूल घास और बाजरे की कलगी से अधिक महत्वपूर्ण है। वे इसी से दुनिया की विशालता को समझने की भूल कर बैठते हैं। जबकि हरी घास और बाजरे की कलगी

लोक जीवन और लोक संस्कृति के अंग हैं। इनसे आम तौर पर शहरी जनजीवन दूर रहता है। कवि ने आगे की पंक्तियों में इन दोनों को संपूर्ण सृष्टि से जोड़ने का प्रयास किया है। कवि ने स्पष्ट कहा है कि जब–जब मैं इन्हें देखता हूँ तो संपूर्ण सृष्टि का विस्तार मानो सघन हो उठता है। विशाल पृथ्वी सिमटी हुई भी प्रतीत होती है। यह इसलिए कि कवि को समूचा संसार उसके आस–पास महसूस होने लगता है। ऐसी स्थिति में वह भाव–विह्वल होकर संपूर्ण सृष्टि के प्रति अपने को समर्पित कर देता है। यह सच है कि शब्द भावों की अभिव्यक्ति का मुख्य माध्यम है जो सुनने वाले पर जादू सा असर करता है परंतु मौन की अभिव्यंजना मुखर न होकर भी अधिक गहनता से भावों को संप्रेषित कर देती है। कवि अंतिम पंक्तियों में यह सवाल पूछता है कि क्या उसके एकांत और स्थिर समर्पण का कोई मोल नहीं है ? यह समर्पण प्रेमिका के प्रति हो सकता है तो प्रकृति अथवा सृष्टि के संदर्भ में भी देखा जा सकता है। कवि की दृष्टि में शब्दों के कृत्रिम जादू से समर्पण कहीं अधिक मूल्यवान है।

कवि अज्ञेय की इस कविता में पारंपरिक प्रतिमानों, उपमानों और प्रतीकों के विरोध के साथ–साथ नए उपमानों के प्रति आग्रह है। नए उपमानों का प्रयोग है। जीवन की एकरसता को त्यागकर उसमें नयापन लाने का प्रयास भी दिखाई पड़ता है। इस कविता में रचना को लोकजीवन से जोड़ने का भी प्रयास परिलक्षित होता है। शाब्दिक चमत्कार से नहीं हृदयगत भावों की अभिव्यंजना ही सर्वश्रेष्ठ होती है। निष्कपट और निश्छल अभिव्यक्ति ही प्रेम के लिए उत्कृष्ट होती है। यह कवि की प्रयोगशील दृष्टि का सुंदर उदाहरण है। इस कविता में कवि की प्रेम चेतना और जीवन दृष्टि का भी काव्यिक समावेश हुआ है।

17.2.5 'सम्राज्ञी का नैवेद्य–दान' कविता का वाचन और विश्लेषण

हे महाबुद्ध !

मैं मंदिर में आयी हूँ
रीते हाथ :
फूल मैं ला न सकी।

औरों का संग्रह
तेरे योग्य न होता।

और जो मुझे सुनाती
जीवन के विह्वल सुख–क्षण का गीत –
खोलती रूप जगत के द्वार जहां
तेरी करुणा
बुनती रहती है

भव के सपनों, क्षण के आनंदों के

रह : सूत्र अविराम–

उस भोली मुग्धा को

कँपती

डाली से विलग न सकी।

जो कली खिलेगी जहां, खिली

जो फूल जहां है,

जो भी सुख

जिस भी डाली पर

हुआ पल्लवित, पुलकित,

मैं उसे वहीं पर

अक्षत, अनाघात, अस्पृश्य, अनाविल

हे महाबुद्ध ?

अर्पित करती हूँ तुझे।

वहीं–वहीं प्रत्येक प्याला जीवन का,

वहीं–वहीं नैवेद्य चढ़ा

अपने सुंदर आनंद–निमिष का,

तेरा हो,

हे विगतागत के, वर्तमान के पद्मकोश !

हे महाबुद्ध !

'सम्राज्ञी का नैवेद्य दान' शीर्षक कविता की व्याख्या के पहले आप इस रचना की पृष्ठभूमि को ध्यानपूर्वक पढ़ लें तो कविता का भाव ग्रहण करने में आपको कठिनाई नहीं होगी। आप जानते हैं कि जापान में बौद्ध धर्म के अनुयायी बड़ी संख्या में हैं। जापान की रानी के लिए 'सम्राज्ञी' का प्रयोग हुआ है। उनका नाम कोमियो था। राजधानी नारा में अवस्थित महाबोधि मंदिर में बुद्ध के दर्शन हेतु जाते समय उनके मन में उमड़ने वाले भावों को इस कविता में प्रस्तुत किया गया है। सम्राज्ञी यह तय नहीं कर पाती हैं कि भगवान बुद्ध को भेंट करने के लिए क्या लेकर जाएँ। काफी चिंतन–मनन के उपरांत वह खाली हाथ भगवान बुद्ध के दर्शन हेतु पहुँचती है। इस पृष्ठभूमि में 'साम्राज्ञी का नैवेद्य दान' कविता सितंबर 1957 में रची गयी थी। एक तथ्य यह भी है कि बौद्ध साहित्य में सम्राज्ञी को मियो का नाम विशेष आदर और सम्मान के साथ उल्लेख मिलता है। आइए, अब हम कविता के पदों की क्रमशः व्याख्या करते हैं।

व्याख्या

हे महाबुद्ध ———————— डाली से बिलग न सकी।

उपर्युक्त कवितांश हिंदी के बहुप्रसिद्ध कवि अज्ञेय की 'सम्राज्ञी का नैवेद्य दान' शीर्षक कविता से अवतरित है। भगवान बुद्ध के श्रेष्ठ भक्तों में सम्राज्ञी को मियो का नाम लिया जाता है। इस कविता में सम्राज्ञी के मनोभावों को कवि ने बड़ी शिद्दत के साथ प्रस्तुत किया है।

माना जाता है कि फूलों का सर्वाधिक सौंदर्य होता है जब वे डाल पर हों। वे वहीं अक्षत, अनाघ्रात और अनाविल रूप से पल्लवित रहते हैं। पुलकित रहते हैं। वे वहीं रहकर स्रष्टा के लिए समर्पित रहते हैं। कहा यह भी जाता है कि डाल से फूल तोड़ने से डाल और पेड़ को दुःख होता है, कष्ट होता है। फूल जीवनरहित हो जाते हैं। डाल से फूल तोड़ने का आशय माँ की गोद से शिशु को छीन लेने के समान है। इन्हीं कारणों से सम्राज्ञी कहती हैं – हे महाबुद्ध ! मैं तुम्हारे इस मंदिर में पूजा करने आयी हूँ लेकिन मेरे पास तुम्हें चढ़ाने के लिए औरों की भाँति पुष्पगुच्छ अथवा हार या पूजा की सामग्री नहीं है। मेरे हाथ में कुछ भी नहीं है। मगर मेरे मन में केवल पवित्र भाव है। यही मेरी पूजा की सामग्री है। लोग आपको भेंट स्वरूप पुष्प अर्पित करते हैं। परंतु मुझे ऐसा लगता है कि फूल तो किसी और का संग्रह है। पुनः उसे तोड़ना हिंसा ही है। ऐसे में आपको पुष्प अर्जित करना मुझे ग्लानि होती है। गौरव का भाव नहीं होता है। हे महाबुद्ध ! आप स्वयं बौद्धिक विवेक के प्रतिमान हैं। आप सारभूत करुणा के परम प्रतीक हैं। इसलिए आप ही मेरे मानसिक द्वंद्व को भली–भाँति समझ रहे होंगे कि आखिर मैं खाली हाथ आपके दर्शन करने क्यों आयी।

कविता के अगले अंश में कवि ने सम्राज्ञी की उलझनभरी मनःस्थिति का चित्रण किया है। सम्राज्ञी कहती हैं कि हे महाबुद्ध! आपकी करुणामयी मुस्कान जीवन के विह्वल सुख–क्षणों का संगीत सुनाती है। इससे मेरे जीवन के न जाने कितने रूप सौंदर्य के द्वार उन्मुक्त हो जाते हैं। क्षण के आनंद के जरिए नए सपने जन्म लेते हैं। ये स्वप्न मुझे डाल पर खिले फूलों में दिखाई पड़ते हैं। मैं भला उन भोली–भाली मुग्धता को डाल से कैसे अलग कर सकती हूँ? इसलिए आप मेरे मन की उलझनभरी दशा को समझ सकते हैं। खाली हाथ आपके दर्शन हेतु आ जाने का कारण आप ही समझ सकते हैं।

अवतरित अंश में जीवन सौंदर्य और करुणा का मनोज्ञ चित्रण हुआ है। महादेवी वर्मा के 'क्या पूजन क्या अर्चन रे' जैसी कविताएँ भी इस संदर्भ में पढ़ी जा सकती हैं।

जो कली खिलेगी ———————— हे महाबुद्ध !

अज्ञेय की 'सम्राज्ञी का नैवेद्य दान' कविता के उपर्युक्त अवतरण में बुद्ध के प्रति सम्राज्ञी का अनन्य समर्पण प्रकट होता है। इन पंक्तियों में सम्राज्ञी का निवेदन वर्णित है।

सृष्टि का कल्याण समूचे अस्तित्व को सुरक्षित रखकर ही संभव होता है। समग्र जीवन को महत्व प्रदान करते हुए सम्राज्ञी कहती हैं कि जो कली जहां भी खिली है,जो फूल जहां भी अपनी शोभा और गंध समर्पित कर रहा है अथवा जीवन से जुड़ा जो भी सुख जिस डाल पर पल्लवित और पुलकित है, उन सबको वहीं बस वहीं बिना कोई हानि पहुँचाए, बिना किसी आघात के, बिना किसी स्पर्श के प्रकृत और पवित्रता के साथ मैं आपको समर्पित करती हूँ। ऐसे अपूर्व समर्पण के लिए कवि ने ''अक्षत, अनाघ्रात, अस्पृष्ट, अनाविल' का प्रयोग किया है। हिंसा के वातावरण में इस भाव का औचित्य और प्रासंगिकता स्वयंसिद्ध है। इस संसार में प्रत्येक मनुष्य को जीवन रूपी प्याले में जो भी प्राप्त है, उसे उसी में प्रसन्न होना चाहिए। धैर्य और संतोष को जीवन की पूँजी मानकर आगे बढ़ना चाहिए। सम्राज्ञी ने अपने आराध्य भगवान बुद्ध को 'विगतागत'(जो बीत चुका है और जो आने वाला है) तथा 'वर्तमान के पद्मकोष' के संबोधन से अतीत में ही नहीं, मौजूदा समय में भी बुद्ध के विचारों की प्रासंगिकता को स्पष्ट किया है।

आज के जीवन में भयानक होड़ लगी हुई है। हम अपनी स्वायत्तता को लेकर चिंतित रहते हैं लेकिन दूसरों की भी स्वायत्तता, होती है, इसे भुला बैठते हैं। स्वतंत्रता के संदर्भ में भी हमारा ऐसा ही आचरण रहता है। जीवन की मूलभूत गुणवत्ता और उसके सौंदर्य को बचाए रखना परम आवश्यक है। यह कविता जीवन की गरिमा, मूल्यपरकता, मानवीय पक्षधरता, करुणा, जीवन विवेक आदि शाश्वत मूल्यों को प्रतिष्ठित करती है।

17.3 भवानी प्रसाद मिश्र की चयनित कविताओं का पाठ और विश्लेषण

अब हम भवानी प्रसाद मिश्र की चयनित कविताओं का अध्ययन करेंगे।

17.3.1 भवानी प्रसाद मिश्र का कवि परिचय

भवानी प्रसाद मिश्र(1913–1985) : अज्ञेय के संपादन में प्रकाशित 'दूसरा सप्तक' के सर्वाधिक महत्वपूर्ण कवि भवानी प्रसाद मिश्र हैं। उन्होंने अपने नए अन्दाज, नयी शैली और नयी काव्य–भाषा का उद्भावन किया जिसने उन्हें लोकप्रिय बनाया। हिंदी साहित्य में वे भवानी भाई के रूप में जाने जाते हैं। गांधी दर्शन से प्रभावित भवानी भाई मूलतः कवि हैं यद्यपि उन्होंने निबंध और संस्मरण विधा में भी साहित्य सृजन किया है। उनके कविता संग्रहों के नाम इस प्रकार हैं–गीत फ़रोश, चकित है दुःख, गांधी पंचशती, बुनी हुई रस्सी, खुशबू के शिलालेख, त्रिकाल संध्या, व्यक्तिगत, परिवर्तन जिए, तुम आते हो, इदम न मम, मानसरोवर दिन, संप्रति, अंधेरी कविताएँ, तूस की आग, कालजयी, अनाम, नीली रेखा तक और सन्नाटा। कवि की कविताओं में निराशा के भावों का प्रत्याख्यान है। आजादी के पहले पराधीनता और आजादी के बाद तानाशाही प्रवृत्ति से जूझना और जीवनानुभवों को कविता में अभिव्यक्त करना भवानी प्रसाद मिश्र का मूल कवि–कर्म है। उनका आदर्श रहा है : ''जिस तरह हम बोलते हैं उस तरह तू लिख/ और उसके बाद भी हमसे बड़ा तू दिख''। उनकी कविताओं में मस्ती और नाटकीयता से भरे लहजे परिलक्षित होते हैं। मसलन, 'नई इबारत' शीर्षक कविता की इन पंक्तियों को पढ़ा जा सकता है–
'कुछ लिख के सो कुछ पढ़ के सो/ तू जिस जगह जागा सबेरे/उस जगह से बढ़ के सो।'
हालाँकि परवर्ती रचनाओं में कवि का यह वैशिष्ट्य क्षीण रूप में ही मिलता है। कवि की कविताओं से गुजरकर यह अहसास होता है कि उनकी कविताएँ पाठक से प्रत्यक्ष संबंध स्थापित करती हैं। प्रकृति और मिट्टी की सोंधी खुशबू से ये कविताएँ भिगी हुई प्रतीत होती हैं। कवि को उनकी कृति 'बुनी हुई रस्सी' पर 1972 में साहित्य अकादेमी पुरस्कार प्राप्त हुआ। इसके अलावा उन्हें उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान और मध्य प्रदेश शासन के शिखर सम्मान से भी सम्मानित किया गया था।

आइए, अब हम पाठ्यक्रम में निर्धारित भवानी प्रसाद मिश्र की 'गीत फ़रोश', 'सन्नाटा', 'फूल कमल के' और 'कहीं नहीं बचे' कविताओं की पदानुसार क्रमशः व्याख्या करें। प्रत्येक कविता के पदों की व्याख्या के पश्चात आप कवि की काव्य संवेदना से भली–भाँति परिचित हो सकेंगे।

17.3.2 'गीत फरोश' कविता का वाचन और विश्लेषण

जी हाँ हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ।

मैं तरह–तरह के

गीत बेचता हूँ;

मैं क़िसिम–क़िसिम के गीत

बेचता हूँ।

जी, माल देखिए दाम बताऊँगा,
बेकाम नहीं है, काम बताऊंगा
कुछ गीत लिखे हैं मस्ती में मैंने,
कुछ गीत लिखे हैं पस्ती में मैंने;
यह गीत, सख़्त सरदर्द भुलायेगा;
यह गीत पिया को पास बुलायेगा।
जी, पहले कुछ दिन शर्म लगी मुझ को
पर पीछे–पीछे अक़्ल जगी मुझ को;
जी, लोगों ने तो बेच दिये ईमान।
जी, आप न हों सुन कर ज्यादा हैरान।
मैं सोच–समझकर आखिर
अपने गीत बेचता हूँ;
जी हाँ हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ।

यह गीत सुबह का है, गा कर देखें,
यह गीत ग़जब का है, ढा कर देखे;
यह गीत जरा सूने में लिखा था,
यह गीत वहाँ पूने में लिखा था।
यह गीत पहाड़ी पर चढ़ जाता है
यह गीत बढ़ाये से बढ़ जाता है
यह गीत भूख और प्यास भगाता है
जी, यह मसान में भूख जगाता है;
यह गीत भुवाली की है हवा हुजूर
यह गीत तपेदिक की है दवा हुजूर।
मैं सीधे–सादे और अटपटे
गीत बेचता हूँ;
जी हाँ हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ।

जी, और गीत भी हैं, दिखलाता हूँ

जी, सुनना चाहें आप तो गाता हूँ;
जी, छंद और बे–छंद पसंद करें –
जी, अमर गीत और वे जो तुरत मरें।
ना, बुरा मानने की इसमें क्या बात,
मैं पास रखे हूँ क़लम और दवात
इनमें से भाये नहीं, नये लिख दूँ ?
इन दिनों की दुहरा है कवि–धंधा,
हैं दोनों चीज़े व्यस्त, कलम, कंधा।
कुछ घंटे लिखने के, कुछ फेरी के
जी, दाम नहीं लूँगा इस देरी के।
मैं नये पुराने सभी तरह के
गीत बेचता हूँ।
जी हाँ, हुज़ूर, मैं गीत बेचता हूँ।

जी, गीत जनम का लिखूँ, मरण का लिखूँ,
जी, गीत जीत का लिखूँ, शरण का लिखूँ,
यह गीत रेशमी है, यह खादी का,
यह गीत पित्त का है, यह बादी का।
कुछ और डिजाइन भी है, यह इल्मी–
यह लीजे चलती चीज नयी फ़िल्मी।
यह सोच–सोच कर मर जाने का गीत,
यह दुकान से घर जाने का गीत।

जी नहीं, दिल्लगी की इसमें क्या बात?
मैं लिखता ही तो रहता हूँ दिन रात,
तो तरह–तरह के बन जाते हैं गीत,
जी, रूठ–रूठ के बन जाते हैं गीत।
जी, बहुत ढेर लग गया, हटाता हूँ,
गाहक की मर्ज़ी, अच्छा जाता हूँ।

मैं बिलकुल अंतिम और दिखाता हूँ–

या भीतर जाकर पूछ आइए आप,

है गीत बेचना वैसे बिलकुल पाप

क्या करूँ मगर लाचार हारकर

गीत बेचता हूँ

जी हाँ, हुजूर मैं गीत बेचता हूँ,

मैं किसिम–किसिम के गीत बेचता हूँ।

व्याख्या :

जी हाँ हुजूर ———— मैं गीत बेचता हूँ।

उपर्युक्त पद्यांश नयी कविता के महत्वपूर्ण कवि भवानी प्रसाद मिश्र की बहुपठित कविता 'गीत फरोश' से उद्धृत किया गया है। अज्ञेय के संपादन में प्रकाशित 'दूसरा सप्तक' में यह कविता पहली बार प्रकाशित हुई थी। बाद में इस कविता के शीर्षक अनुसार कवि के 'गीत फरोश' कविता संग्रह का प्रकाशन हुआ था।

अपनी तंगहाली में ग्राहकों के लिए कविता लिखकर उसे बेचने की स्थिति का चित्रण इस कविता में हुआ है। साथ ही, कवि का तत्कालीन व्यवस्था पर व्यंग्य भी देखा जा सकता है।

कवि अपनी विपन्नावस्था का संकेत करते हुए कहता है कि आज मेरी स्थिति इतनी दयनीय हो गई है कि मुझे अपने हृदय के भावों को व्यक्त करने के लिए जिन शब्दों को मैंने अत्यंत आत्मीयतापूर्वक संजोया था उन्हें बेचना पड़ रहा है। मैं अपनी कलम बेचने में यकीन नहीं करता लेकिन त्रासद परिस्थितियों में इसके सिवा मेरे पास और कोई चारा नहीं है। कोई भी सच्चा कवि अपनी कलम बेचना नहीं चाहता है पर भीषण आर्थिक कष्ट में वह वैसा करने के लिए लाचार और विवश हो जाता है। कवि ने ऐसी परिस्थिति की ओर संकेत किया है। वह बिना किसी संकोच और ग्लानि के स्पष्ट कहता है कि जी हाँ, हुजूर मैं गीत बेचता हूँ। भाँति–भाँति के गीत बेचता हूँ। ध्यान देने की बात है कि परिस्थितियाँ मनुष्य की ग्लानि और संकोच को दूर कर देती हैं। दूसरी बात यह है कि कवि कविता नहीं गीत बेच रहा है। कविता और गीत में निहित अंतर आप समझते ही होंगे। गीतों में लयात्मकता, प्राणावेग, तल्लीनता आदि होती हैं। इन भावों से सृजित गीतों को बेचना सीने पर पत्थर रखने के समान है। गीत बेचना कवि का शौक़ नहीं बल्कि मजबूरी है।

आप जानते हैं कि पूँजीवादी दौर में सब कुछ बिकाऊ है। कवि के पास गीतों का अथाह भंडार है। कवि ग्राहकों से आग्रह करता है कि आप गीत पसंद कीजिए। आपकी पसंद के गीतों का कोई न कोई अर्थ अवश्य होगा। माल पसंद आ जाए तो उसका दाम बता दूँगा। मेरे गीत आपके किसी न किसी काम के साबित होंगे। सुख हो अथवा दुःख, आशा हो या निराशा, जय हो अथवा पराजय, चिंता हो अथवा आनंद, प्रेम हो अथवा विरह उसके अनुकूल गीत आपको मेरे पास मिल जाएँगे। आपकी परिस्थितियों के अनुकूल मेरे गीत आपके भावों के साथ–साथ यात्रा करने में सफल होंगे। मेरे सभी गीत सार्थक हैं, निरर्थक हो ही नहीं सकते। यदि आप मेरे गीतों के अर्थ नहीं ग्रहण कर सकते और आपको पसंद न आएँ तो मैं उनका अर्थ बताने के लिए तैयार हूँ। कवि स्पष्ट शब्दों में कहता है कि उसके गीत किसी न किसी काम के हैं, बेकार और निरर्थक नहीं हैं। पहले–पहल गीत बेचने में उसे शर्म लगी थी, लेकिन कुछ दिनों बाद वह भाव भी नहीं रहा। पूँजीवादी समय ने हर व्यक्ति को महज उपभोक्ता बनाकर छोड़ दिया है। यहाँ सब कुछ बेचा और ख़रीदा जा सकता है। परिवर्तित समय और समाज में मनुष्य अपना ईमान तक बेचने में लज्जा महसूस नहीं कर रहा

है। अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए ईमान, धर्म आदि सबकुछ दांव पर लगा दे रहे हैं। कवि तो अपनी मेहनत से गीत बेच रहा है जिनका सृजन उसने अपनी प्रतिभा और जीवनानुभवों के माध्यम से साकार किया है। ख़ैर, आप इस पर अधिक न सोचें और परेशान न हों।

कहना न होगा कि भवानी प्रसाद मिश्र ने अपने समय और समाज का यथार्थ चित्र अंकन किया है तथा एक कवि अथवा गीतकार की मनःस्थितियों को सार्थक ढंग से उकेरा है। ध्यान देने की बात है कि अपनी शोचनीय स्थिति में भी कवि ने रचना की मस्ती और जीवंतता में कोई कमी होने नहीं दी है।

यह गीत सुबह का है ———————— गीत बेचता हूँ।

इन पंक्तियों में कवि ग्राहक को अपने माल का बखान करते हुए कहता है कि उसके पास सुबह–शाम के अलग–अलग गीत हैं। गीतों का वैविध्य है। बस ग्राहक इन गीतों को गाकर देखें और समझे कि गीत सुबह का है अथवा शाम का, सुख का है अथवा दुःख का, भूख बढ़ाने वाला है या भूख जगाने वाला। कहने का आशय है कि कवि के पास व्यापक जीवन संदर्भ के विविध भावों के गीत मौजूद हैं। जो भी गीत अभी तक उन्होंने ग्राहकों को दिखाए, वे पसंद न आए तो वह और भी गीत दिखा सकता है। उसके पास गीतों का अक्षय भंडार है। अगर वे गीत भी पसंद न आए तो ग्राहकों की पसंद के अनुसार गीत रचने को तैयार है। कवि कहता है कि श्रीमान अब तो आपकी मर्जी पर निर्भर है। आप जिस तरह का गीत पसंद करते हैं और जैसा गीत ख़रीदना चाहते हैं मैं तत्काल आपके सामने वैसा गीत रचकर प्रस्तुत कर सकता हूँ। मैं रात–दिन गीत ही लिखता रहता हूँ। आवश्यकता के अनुसार गीत रचने में सक्षम हूँ। मेरे पास कलम और दवात दोनों मौजूद हैं। तत्काल आपकी पसंद का गीत लिखकर पेश कर सकता हूँ। नए पुराने सभी प्रकार के गीत रचने में में काबिल हूँ। बस इतना बताया जाए कि नए गीत चाहिए या पुराने। प्रिय वियोग में डूबी नायिका की भावनाओं को अपने गीतों में क़ैद कर सकता हूँ तो प्रिय–वियोग से व्यथित नायिका की मृत्यु को भी अपनी रचनाओं में उभार सकता हूँ। आप केवल अपनी पसंद और रुचि बता दें तो उसी के अनुरूप गीत प्रस्तुत कर दूँगा। यह एक गीत है उनके लिए जो अपने को बाजार के हवाले कर चुके हैं और जिनकी रुचि नितांत निम्न स्तर की हो चुकी है। ऐसे लोगों के मनोरंजन करने वाले गीत भी मेरे पास हैं।

जी, गीत जनम का लिखूँ ———————— गीत बेचता हूँ।

इन पंक्तियों में कवि ने कहा है कि मैं मानव जीवन की प्रत्येक स्थिति के अनुसार गीतों की रचना कर सकता हूँ। जन्म–मृत्यु, हार–जीत, आदि तमाम डिजाइन के गीत मेरे पास हैं। इल्मी हो या फिल्मी, चिंता हो अथवा मस्ती सभी प्रकार के गीत लिख सकता हूँ। आपको कोई गीत पसंद न आए तो कोई बात नहीं। मैंने आपको बहुत माल दिखा दिया है, सामानों का ढेर लग चुका है। लेकिन, आपसे इतना अनुरोध है कि आप अपनी पसंद बता दें, आपकी सेवा में वैसा गीत तत्काल रचा जाएगा। जरा ठहरिए, उठकर न जाएँ, मैं आपको अपना आख़िरी गीत दिखाता हूँ। हो सकता है कि वह आपकी रुचि के अनुसार हो। मुझे पता है कि गीत बेचना पाप है। लेकिन भूखा क्या नहीं करता? मैंने लाचारी में यह पेशा अपनाया है।

जिस प्रकार एक विक्रेता अथवा फेरीवाला अपने सामान की खूबी बताता है, इसी तरह इस कविता में कवि ने अपने गीतों के गुणों का बखान किया है। बाजारवादी अर्थव्यवस्था में उसकी शोचनीय आर्थिक स्थिति ने उसे लाचार और विवश बना दिया है। इस कविता को समझने के लिए कवि के 'गीत फरोश' के बारे में जो कहा है, उसे पढ़ लिया जाए– 'गीत फरोश शीर्षक हंसाने वाली कविता मैंने बड़ी तकलीफ में लिखी थी। मैं पैसे को कोई महत्व नहीं देता लेकिन पैसा बीच–बीच में अपना महत्व स्वयं प्रतिष्ठित करा लेता है। मुझे अपनी बहन की शादी करनी थी। पैसा मेरे पास था नहीं तो मैंने कलकत्ते में बन रही फिल्म के लिए गीत लिखे। गीत अच्छे लिखे गए। लेकिन मुझे इस

बात का दुःख था कि मैंने पैसे लेकर गीत लिखे। ———मैं कुछ लिखूँ इसका पैसा मिल जाए, यह अलग बात है, लेकिन कोई मुझसे कहे कि इतने पैसा देता तुम गीत लिख दो। यह स्थिति मुझे बहुत नापसंद। क्योंकि मैं ऐसा मानता हूँ कि आदमी की जो साधना का विषय है वह उसकी जीविका का विषय नहीं होना चाहिए। फिर कविता तो अपनी इच्छा से लिखी जाने वाली चीज नहीं है। वह अनायास उत्पन्न होती है। इस तकलीफदेह पृष्ठभूमि में लिखी गई 'गीत फरोश'।

इस कविता में समाज की कला विमुखता और आर्थिक असमानता पर गहरी चोट है। पतनोन्मुखी समाज की मानसिकता को उजागर करती है। पूरी कविता में गीत की मिठास बनी हुई है। यहाँ कवि की नैतिकता और मानव मूल्य की प्रतिष्ठा की कामना परिलक्षित होती है। कविता से गुजर कर पता चलता है कि असह्य दुःख और अभाव में हास्य और व्यंग्य की धारा प्रवाहित हो सकती है। कवि की समृद्ध संस्कृति चेतना और मानवीय मूल्यबोध की चिंता भी उक्त कविता के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है। साहित्यकारों की यथार्थ स्थिति को यह कविता व्यक्त करती है। भाषा की सहजता और जीवंतता कविता को सर्वजन के लिए बोधगम्य बनाती है। भवानी प्रसाद मिश्र की इस कविता को काव्यप्रेमियों ने सर्वाधिक पसंद किया है।

17.3.3 'सन्नाटा' कविता का वाचन और विश्लेषण

तो पहले अपना नाम बता दूँ तुमको
फिर चुपके–चुपके धाम बता दूँ तुमको;
तुम चौंक नहीं पड़ना, यदि धीमे–धीमे
मैं अपना कोई काम बता दूँ तुमको।

कुछ लोग भ्रांतिवश मुझे शांति कहते हैं,
निस्तब्ध बताते हैं कुछ चुप रहते हैं;
मैं शांत नहीं, निस्तब्ध नहीं, फिर क्या हूँ?
मैं मौन नहीं हूँ, मुझमें स्वर बहते हैं।

कभी–कभी कुछ मुझमें चल जाता है,
कभी–कभी कुछ मुझमें जल जाता है;
जो चलता है, वह शायद है मेढक हो,
वह जुगनू है, जो तुमको छल जाता है।

मैं सन्नाटा हूँ, फिर भी बोल रहा हूँ,
मैं शांत हूँ फिर भी डोल रहा हूँ;
यह 'सर–सर' यह 'खड़–खड़' सब मेरी है
है यह रहस्य मैं इसको खोल रहा हूँ।

मैं सूने में रहता हूँ, ऐसा सूना,
जहां घास उगा रहता है ऊना;
और झाड़ कुछ इमली के, पीपल के,
अंधकार जिनसे होता है दूना।

तुम देख रहे हो मुझको, जहां खड़ा हूँ !
तुम देख रहे हो मुझको जहां पड़ा हूँ !
मैं ऐसे ही खंडहर चुनता फिरता हूँ,
मैं ऐसी ही जगहों में पला, बढ़ा हूँ।

हाँ, यहाँ किले की दीवारों के ऊपर,
नीचे तलघर में या समतल पर, भू पर,
कुछ जन–श्रुतियों पर पहरा यहाँ लगा है,
जो मुझे भयानक कर देती है छू कर।

तुम डरो नहीं, डर वैसे क़हाँ नहीं है ?
पर ख़ास बात डर की कुछ यहाँ नहीं है;
बस एक बात है, वह केवल ऐसी है,
कुछ लोग यहाँ थे, अब वे यहाँ नहीं हैं।

यहाँ बहुत दिन हुए एक थी रानी,
इतिहास बताता उसकी नहीं कहानी;
वह किसी एक पागल पर जान दिए थी,
थी उसकी केवल एक यही नादानी।

यह घाट नदी का, अब जो टूट गया है,
यह घाट नदी का, अब जो फूट गया है;
वह यहाँ बैठकर रोज–रोज गाता था,

अब यहाँ बैठना उसका छूट गया है।

शाम हुए रानी खिड़की पर आती,
थी पागल के गीतों को वह दुहराती;
तब पागल आता और बजाता बंशी,
रानी उसकी बंशी पर चूप कर गाती

किसी एक दिन राजा ने यह देखा,
खिंच गयी हृदय पर उसके दुःख की रेखा;
वह भरा क्रोध में आया और रानी से,
उसने माँगा इन सब साँझो का लेखा।
रानी बोली पागल को जरा बुला दो,
मैं पागल हूँ, राजा तुम मुझे भुला दो;
मैं बहुत दिनों से जाग रही हूँ राजा,
बंशी बजवा कर मुझको जरा सुला दो।

वह राजा था हाँ, कोई खेल नहीं था,
ऐसे जवाब से उसका मेल नहीं था;
रानी ऐसे बोली थी, जैसे उसके
इस बड़े क़िले में कोई जेल नहीं था।

तुम जहां खड़े हो, यहीं कभी सूली थी,
रानी की कोमल देह यहीं झुली थी;
हाँ, पागल की भी यही, यहीं रानी की,
राजा हँस कर बोला, रानी भूली थी।

किंतु नहीं फिर राजा ने सुख जाना,
हर जगह गूंजता था पागल का गाना;
बीच–बीच में, राजा तुम भूले थे,

रानी को हँसकर सुन पड़ता था ताना।

तब और बरस बीते, राजा भी बीते,

रह गए क़िले के कमरे–कमरे रीते;

तब मैं आया, कुछ मेरे साथी आए,

अब हम सब मिलकर करते हैं मनचीते।

पर कभी–कभी जब पागल आ जाता है,

लाता है रानी को, या गा जाता है;

तब मेरे उल्लू, साँप और गिरगिट पर,

अनजान एक सकता–सा छा जाता है।

————————————

आपने 'गीत फरोश' और 'सन्नाटा' कविताएँ पढ़ ली होंगी। ये दोनों कविताएँ लयात्मक और तुकांत हैं। दोनों कविताएँ गेय हैं अर्थात् गायी जा सकती हैं। 'सन्नाटा' कविता की सबसे बड़ी खूबी यह है कि इसमें एक कहानी है। कविता में कथा का समावेश उसे केवल रोचक नहीं बनाता है बल्कि नया आयाम भी देता है। यह कविता पाठक अथवा श्रोता की चित्तवृत्ति का विकास करने के साथ–साथ एक भिन्न संसार में पहुँचाती है। आइए, अब हम 'सन्नाटा' शीर्षक लंबी कविता की व्याख्या पढ़ें ताकि इसके माध्यम से कवि भवानी प्रसाद मिश्र की चिंता और चेतना से परिचित हो सकें।

व्याख्याः

तो पहले ———————— तुमको छल जाता है।

नयी कविता के प्रतिनिधि कवि भवानी प्रसाद मिश्र की 'सन्नाटा' से उपर्युक्त पद अवतरित किए गए हैं। इस कविता का शीर्षक जिज्ञासाजन्य कई अंतर्विरोधी विचारों को प्रतिबिम्बित करती है। 'सन्नाटा' में तमाम मानसिक उथल–पुथल के भाव अंकित हैं। यह सन्नाटा अपनी स्मृति में कई अमानवीय कृत्यों का साक्षी रहा है जो अपने सीने में अनेकानेक रहस्यों को समाहित किया हुआ है। इनमें से कुछ अनुभवों को साझा किया गया है। पुनः जिस प्रकार कहानी में एक औत्सुक्य बना रहता है, फिर क्या हुआ, आगे क्या हुआ का भाव हुआ करता है; इस कविता की शुरुआत में ही सन्नाटा प्रत्यक्ष रूप में पाठकों से अपना परिचय और संवाद स्थापित करते हुए कवि ने दिखाया है। वह अपना नाम, स्थान आदि बताकर परिचय को आगे बढ़ाना चाहता है। लेकिन पाठकीय औत्सुक्य बनाए रखने के लिए न अपना नाम बताता है और न धाम। सन्नाटा का शब्दकोशीय अर्थ है स्तब्धता, चुप्पी, मौन, शांति, निर्जनता। लेकिन, शांति या चुप्पी, मौन अथवा निर्जनता को सन्नाटा समझना भ्रांति है। शांति, चुप्पी आदि की स्थिति आनंददायक भी हो सकती है जबकि सन्नाटे की स्थिति सदा कष्टदायी होती है। सन्नाटा एक ऐसे वातावरण की ओर संकेत करता है जिसमें किसी भी प्रकार का कोई शब्द न हो रहा हो। उक्त स्थिति में पड़कर भयभीत या भौंचक होने का भाव होता है। निराला नीरव विशेष को सन्नाटा कहा जा सकता है। नीरवता में भी स्वर बहते रहते हैं। इसलिए इसे निराला नीरव विशेष कहना अधिक युक्ति–युक्त प्रतीत होता है। सन्नाटा स्वयं पूछता है कि यदि मैं शांत नहीं, स्निग्ध नहीं तो फिर मैं क्या हूँ? मैं भोला–भाला नहीं हूँ। मुझमें स्वर बहते

रहते हैं। कभी–कभी मुझसे कोई टकरा कर चलने लगता है जैसे किसी मेढक की उछल–कूद हो। कभी–कभी मुझमें कोई ज्योति–स्फुलिंग चमकने लगता है जैसे जुगनू मेरे अस्तित्व को चुनौती दे रहा है। सन्नाटा भरे वातावरण में मनुष्य कई प्रकार के भ्रमों का शिकार होता रहता है। यहाँ एक त्रासद और ख़ास वातावरण की ओर संकेत मिलता है।

कवि ने 'मैं' शैली का प्रयोग किया है। कथा–संरचना का निर्वाह काव्य के शिल्प–विधान को प्रभावी बनाता है। सन्नाटा का सुंदर मानवीकरण किया गया है। आम बोलचाल की सहज शब्दावली का प्रयोग किया गया है।

मैं सन्नाटा हूँ ———————— अंधकार जिनसे होता है टूना।

प्रस्तुत पंक्तियाँ भवानी प्रसाद मिश्र की महत्वपूर्ण कविता 'सन्नाटा' से अवतरित हैं। इन पंक्तियों में सन्नाटा अपनी क्रियाशील गतिविधियों के साथ प्रस्तुत है।

सन्नाटा अपनी परिस्थितिजन्य विशेषताओं को रेखांकित करते हुए कहता है – जैसे कहने के लिए तो मैं सन्नाटा हूँ परंतु मेरा स्वरूप स्वयं में ही इतना मुखर है कि वह सब कुछ स्पष्ट कर देता है। देखने में तो मैं बहुत शांत हूँ परंतु मेरे अंतर्मन में बेहद उथल–पुथल है। यह 'सर–सर', 'खड़–खड़' की ध्वनियाँ मेरी ही क्रियाएँ हैं। इनके माध्यम से मैं बहुत कुछ छिपी हुई रहस्यजनित घटनाओं की पोल खोलना चाहता हूँ। आशय यह है कि सन्नाटा वस्तुतः शब्दहीन और क्रियाहीन न होकर बेहद मुखर और सक्रिय है जो अपनी निस्तब्धता में अनेक रहस्यों को दमित किए हुए हैं जिन्हें वह 'सर–सर' 'खड़–खड़' के साथ प्रकट कर रहा है।

वह आगे कहता है कि मैं प्रकृति, परिवेश और परिस्थिति के अनुकूल आचरण करता हूँ। जब पूरे परिवेश में गहरा सूनापन छाया रहता है तब मैं भी ऐसा सूना हो जाता हूँ जैसे नाम मात्र के घास उगी रहती है। कहीं घने अंधकार भरे वातावरण में इमली तथा पीपल की सघनता के बीच बैठकर मैं उस अंधकार को और भी घना कर देता हूँ। वस्तुतः यहाँ सन्नाटा की स्वरूपगत विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं।

तुम देख रहे हो ———————— कर देती है छू कर।

इन पंक्तियों में सन्नाटा अपने निवास स्थान का पता और परिचय रहस्यात्मक ढंग से देते हुए कहता है कि क्या तुम उस स्थान को देख रहे हो जहां मैं खड़ा हूँ, जहां मैं पसरा हुआ हूँ। दरअसल मैं ऐसे खंडहरों की तलाश में ही रहता हूँ। इन्हीं स्थानों में ही मेरा लालन–पालन हुआ है अर्थात् सन्नाटा भीड़ और कोलाहल से दूर, जनजीवन की सक्रिय उपस्थिति से दूर किन्ही पुरानी इमारतों, खंडहरों के बीच पसरी होती है जिन्हें निर्जन कहा जाता है। जैसे इतिहास में विस्मृत किसी किले की दीवारों के ऊपर अथवा नीचे किसी तलघर की भूमि पर इसकी संरचना से जुड़ी कुछ जनश्रुतियाँ, लोकापवाद आदि मिथकों के रूप में प्रचारित होकर मेरे निवास स्थान को भयानक बना डालती हैं। तात्पर्य है कि सन्नाटा भरे स्थान से अनेक प्रकार की किंवदंतियाँ, अप्राकृतिक शक्तियाँ, घटनाएँ और जनश्रुतियाँ जुड़कर उसे अधिक भयानकता प्रदान करती हैं।

तुम डरो नहीं ———————— केवल एक यही नादानी।

उपर्युक्त अवतरित अंश में कवि कहता है कि सन्नाटा से जुड़ी कथाएँ बनाई हुई होती हैं। इन कथाओं से लोग डर जाते हैं लेकिन कवि आश्वस्त करता है कि इनसे डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। ऐसे भी डर क़हाँ नहीं होता है। अर्थात कवि अपने समकाल में पसरे डर, भय और आतंक के माहौल की ओर संकेत कर रहा है। डर सर्वत्र अपनी उपस्थिति दर्ज करना चाहता है। डरा हुआ इंसान अपना विवेक, बुद्धि आदि खो बैठता है। सत्ता अपने वर्चस्व के लिए डराए रखना चाहती है। आगे की पंक्तियों में कवि एक कथा सुना रहा है कुछ लोग जो यहाँ थे अब वे नहीं हैं। सन्नाटा

का संबंध कहीं न कहीं इतिहास के कुछ अलिखित पन्नों से भी जुड़ा रहता है। इसी संदर्भ में संवाद को आगे बढ़ाते हुए कवि एक कहानी सुनाता है। वर्षों पहले यहाँ एक रानी हुआ करती थी। किंतु इतिहास के पन्नों में उसका नाम कहीं भी लिखा हुआ नहीं है। वह रानी किसी पागल से प्रेम करती थी। वही उसकी सबसे बड़ी भूल और नादानी थी राजा की दृष्टि में। इतिहास अधूरा होता है। उसकी सचाई भी यदा–कदा प्रश्नों के घेरे में रहती ही है। इतिहास में निहित अंतर्विरोध की ओर भी इस अवतरित अंश के माध्यम से संकेत मिलता है।

यह घाट नदी का ———————— साँझों का लेखा।

अवतरित अंश में सन्नाटा रानी की कहानी को आगे बढ़ाते हुए कहता है कि नदी का यह जो घाट टूट–फूट गया है कभी यहाँ वह पागल आया करता था। इसी घाट पर बैठे शाम को बंशी की सुमधुर धुन बजाया करता था। रानी अपने महल की खिड़की के पास आतीं और पागल की सुमधुर ध्वनि से आत्महरा हो जाया करती थीं। मुग्ध होकर सुना करती थी। वंशी की ध्वनि के साथ ताल मिलाते हुए रानी खुद गाने लगती थी। प्रेमाभिव्यक्ति का यह क्रम लगातार चलता रहा। अचानक एक दिन राजा के सामने यह रहस्य खुल गया। राजा के हृदय को गहरा धक्का लगा। उसे बड़ी चोट पहुँची। उसे क्रोध आया। उसने रानी से तमाम शाम का हिसाब माँगा। अर्थात, एक स्त्री के हृदय की अनुभूतियों और इच्छाओं पर पुरुष सत्ता का नियंत्रण हमेशा रहा है। यहाँ भी मर्दवादी सोच का प्रतिफलन दिखाई पड़ता है। राजा उसी सत्ता का प्रतीक है। वह रानी के इस आचरण से तिलमिला उठता है। रानी को मर्यादा उल्लंघन के अपराध में कठघरे में खड़ा कर दिया जाता है। अतः स्पष्ट है कि प्राचीन काल से स्त्री–अस्मिता, स्त्री अधिकार और स्त्री स्वातत्र्य को कभी धर्म के नाम पर तो कभी मर्यादा अथवा कुल–कानि के बहाने पुरुषवर्चस्व वाले समाज ने हमेशा अपनी मुट्ठी में दबाए रखा है।

रानी बोली पागल ———————— कोई जेल नहीं था।

इस अवतरित अंश में कवि की स्त्री चिंता और स्त्री दृष्टि का पता चलता है। रानी द्वारा आत्माभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और स्वातंत्र्यबोध को भी कवि ने कविता में व्यक्त किया है। कहानी के अगले अंश को आगे बढ़ाते हुए सन्नाटा के माध्यम से कवि कहता है कि सता द्वारा पूछे गए सवाल से रानी तनिक भी विचलित नहीं होती हैं। वह पूरे साहस और आत्माभिमान के साथ उस पागल को बुलाने के लिए राजा से अनुरोध करती है। वह साफ शब्दों में कहती है कि मैं (उसके प्रेम में) पागल हूँ। मुझे भुला दो। मैं जैसे बहुत दिनों से जाग रही हूँ, मैं वर्षों से सच्चे प्रेम की तलाश में थी, अब जाकर वह मुझे हासिल हुआ है। उस पागल की बंशी की धुन ही मेरे हृदय की अतृप्ति को तृप्त कर रही है। उसके तान मेरे हृदय में मुकुल भरते हैं। अतः पागल को बुलाकर उससे बंशी वादन करवा कर मेरे हृदय को शांत करो।

रानी के मुख से ऐसे अप्रत्याशित उत्तर सुनकर राजा उत्तेजित हो उठता है। राजा तो राजा होता है। फ़रमान उसके चलते हैं। उसकी जुबान से निकली हुई बात आदेश होती है। रानी के जवाब का उसके सामने कोई मायने नहीं रखता है। एक स्त्री की जुबान से (भले ही रानी की क्यों न हो) अपने प्रेम की दृढ़ अभिव्यक्ति, निडर स्वीकृति, अपार साहस आदि सुनना राजा के लिए असह्य हो उठा। शायद, रानी को यह भी मालूम न था कि उसके लिए भी दंड का विधान हो सकता है। संभवतः यह भी हो सकता है कि वह अपने प्रेम के सामने दंड की कुछ परवाह ही नहीं करती थी। स्पष्ट है कि राजसत्ता के सामने प्रेम और लोक सत्ता को अधिक महत्व दिया गया है।

तुम जहां खड़े हो ———————— सुन पड़ता था ताना।

प्रस्तुत पद्यांश में 'सन्नाटा' रानी और पागल के प्रेम की परिणति पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही, यहाँ प्रेम की शाश्वतता को भी रेखांकित किया गया है।

कथावाचक की भूमिका में सन्नाटा है। कवि सन्नाटा के माध्यम से कहता है कि तुम आज जहां खड़े हो, वहाँ कभी सूली हुआ करती थी जिस पर रानी और पागल की कोमल प्रेम कथा को लटका दिया गया था। केवल इस आरोप से कि उनमें प्रेम था। राजा ने रानी और पागल को मृत्युदंड देकर अट्टहास किया। उसने अपने आपको गौरवान्वित महसूस किया। उसके अनुसार प्रभुसत्ता की विजय हुई। वह कहता है कि रानी तुम भोली थी क्योंकि तुमने अभिव्यक्ति के ख़तरे उठाने का दुस्साहस किया। लेकिन इस घटना के बाद राजा को कभी कोई चैन नहीं मिला उसे फिर कभी शांति नहीं मिली। प्रेम को दफना देने का झूठा आत्मतोष उसके हृदय को अशांत करता रहा। उसे हर जगह पागल का गाना गूंजता हुआ सुनाई पड़ता था। कभी–कभी उसे रानी का ताना भी सुनाई पड़ने लगा था। वह जैसे सुना रही हो कि राजा तुम भोले थे। प्रेम कभी मरता नहीं, मिटता नहीं। सत्ता जरूर एक दिन मिट जाती है। प्रेम को सूली पर नहीं चढ़ाया जा सकता। प्रेम स्वयं अविनाशी है। प्रेम को कारागार में अवरुद्ध नहीं किया जा सकता। उसे किसी भी समाज व्यवस्था अथवा राजकीय तंत्र के किसी भी कानून और संविधान के तहत प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता है। प्रेम की सत्ता सर्वोपरि है। अतः राजा को मृत्यु के उपरांत पागल का गाना सुनाई पड़ना दरअसल पूरी राज सत्ता को चुनौती है। प्रेम के शाश्वत रूप का मनोज्ञ चित्रण है। कथा एवं संवाद शैली का सुंदर प्रयोग हुआ है।

तब और बरस बीते ———————— सकता–सा छा जाता है।

'दूसरा सप्तक' और 'नयी कविता' के महत्वपूर्ण कवि भवानी प्रसाद मिश्र की प्रतिनिधि कविता 'सन्नाटा' से उपर्युक्त पंक्तियाँ उद्धृत हैं। कविता के इन अंतिम दो पदों में कवि ने अमर प्रेम की कथा के अंकन का समापन किया है।

इस अंश में सन्नाटा के माध्यम से कवि ने कहा है कि रानी और पागल के गुजरे कई वर्ष बीते। राजा भी गुजर गया। बस क़िले की बेवस इमारतें ही शेष रह गयीं। महल में सूनापन छा गया। किसी का कोई अस्तित्व नहीं बचा। तभी मैं अपने साथियों के साथ यहाँ आया और फिर हम यहाँ रहने लगे। अब हम सभी मिलकर यहाँ प्रसन्नतापूर्वक रहते हैं। परंतु जब कभी वह पागल रानी के साथ यहाँ आ जाता है तब जैसे वह मेरे अस्तित्व को ललकारने लगता है। उस वक्त मैं तथा मेरे साथी–उल्लू, साँप, गिरगिट सभी सकते में आ जाते हैं। वह हमारी दिनचर्या में हलचल मचा देता है। हमें प्रभावित कर देता है।

प्रेम संवेदना में बेहद प्रखरता और शक्ति होती है। उसमें किसी भी काल, घटना अथवा परिस्थिति को प्रभावित करने का पूरा सामर्थ्य होता है। उसे चुनौती देनेवाले चाहे कितने ही शक्ति संपन्न क्यों न हों, सदा प्रेम की ही विजय होती है। इस कविता में जहां एक ओर सन्नाटा की निस्तबद्धता है तो दूसरी ओर उसकी प्रखर मुखरता अभिव्यंजित हुई है। इस कविता में सन्नाटा का मूर्त रूप और मानवीकरण को बड़ी शिद्दत के साथ प्रस्तुत करने में कवि भवानी प्रसाद मिश्र को विशिष्ट सफलता प्राप्त हुई है। पूरी कविता में सन्नाटा मानो पाठकों से संवाद स्थापित करती है। सहज, सरल और प्रभावशाली भाषा शैली के कारण यह कविता आम पाठक के लिए भी अत्यंत बोधगम्य है।

17.3.4 'फूल कमल के' कविता का वाचन और विश्लेषण

फूल लाया हूँ कमल के।

क्या करूँ' इनका ?

पसारें आप आँचल,

छोड़ दूँ;

हो जाए जी हल्का!

किन्तु होगा क्या कमल के फूल का?

कुछ नहीं होता
किसी की भूल का––––––
मेरी कि तेरी हो––––––
ये कमल के फूल केवल भूल हैं !
भूल से आँचल भरूँ ना
गोद में इनका सँभाले
मैं वजन इनके मरूँ––– ना

ये कमल के फूल
लेकिन मानसर के हैं,
इन्हें हूँ बीच से लाया,
न समझो तीर पर के हैं ।

भूल भी यदि है
अछूती भूल हैं !
मानसरोवरवाले
कमल के फूल हैं।

———————

'फूल कमल के' शीर्षक कविता सबसे पहले 'दूसरा सप्तक' के प्रथम संस्करण में प्रकाशित हुई जो प्रगति प्रकाशन दिल्ली से छपा था। इसका दूसरा ड्राफ्ट 'दूसरा सप्तक' के दसवें संस्करण में सामान्य परिवर्तन के साथ छपा था जो ज्ञानपीठ से 2009 में आया था। इस कविता का तीसरा ड्राफ्ट कवि के 'ये कोहरे मेरे हैं' कविता संग्रह में संकलित है। आपके लिए प्रस्तुत कविता 'दूसरा सप्तक' के दसवें संस्करण से ली गयी है।

भवानी प्रसाद मिश्र ने इस देश के साधारण लोगों के रोजमर्रा की जिंदगी को अपनी कविताओं में व्यक्त किया है। उनकी कविताओं का सबसे बड़ा वैशिष्ट्य है कि इनमें सहज, सरल और बोलचाल की शब्दावली का प्रयोग। इससे पाठकों को अर्थ–ग्रहण करने में कोई कठिनाई नहीं होती। पाठक कवि के भावों का सहयात्री बनकर कविता को बोधगम्य बनाता है। वास्तव में उनकी सहजता आधुनिक हिंदी कविता में अपने जैसी एक ही है। सहज अनुभूति को सहज भाषा में असाधारण

अभिव्यक्ति प्रदान कर देना इनके कवि कर्म की प्रमुख विशेषता है। एक प्रेमपूर्ण, राग–भीगा मानववाद उनकी एक–एक पंक्ति में बसा हुआ है। समष्टि के सामने समर्पण की भावना उनके काव्य में प्रबल है। अपने गीतों को कमल के फूलों की तरह वे मनुष्यता के आँचल में रख देना चाहते हैं। आइए, 'फूल कमल के' कविता की व्याख्या करते हैं।

व्याख्या :

फूल लाया हूँ कमल के ———————— कमल के फूल का ?

हिंदी के महत्वपूर्ण कवि भवानी प्रसाद मिश्र की 'फूल कमल के' शीर्षक कविता से अवतरित इस कवितांश में कवि का कहना है कि मैं गीत रूपी कमल के फूल लेकर आया हूँ। कमल के फूल प्रतीक हैं प्रेम के, प्रणय– निवेदन और आदर सत्कार के। सांस्कृतिक रूप में इसका अलग महत्व है। कवि अपनी प्रेयसी/आराध्य से पूछ रहा है कि वह कमल के फूलों का का क्या करे? यदि आप अपना आँचल पसार दे तो उसमें कमल के फूल रूपी मनोभावना अर्थात् मन के भावों को आँचल में रख दे? आप जानते हैं कि आँचल सबसे सुरक्षित स्थान होता है। उसके आँचल में कमल के फूल यानी हृदय की भावनाएँ डाल कर वह अपने को हल्का महसूस करेगा। पुनः कवि का सवाल है कि कमल के फूल का क्या होगा? अर्थात, वह अपने मनोभावों को तो अर्पित कर देगा, भावों को व्यक्त कर भी दे तो उसे ग्रहण करने वाला वाली स्वीकार करे तब कोई बात बने।

कुछ नहीं होता ———————— मरूँ ना।

इन पंक्तियों में कवि ने कहा है कि कुछ नहीं होता है कमल के फूल अर्पित कर देने से। मूल बात है कि जो कुछ समर्पित कर दिया गया वह स्वीकृत हुआ कि नहीं। कवि की प्रेयसी के माध्यम से कहा गया है कि यह जो आकर्षण जन्मा है यह एक भूल है क्योंकि सामाजिक मान्यताओं और वर्जनाओं के कारण यह भूल है और इसी अर्थ में कमल का फूल भी भूल है। चाहे यह भूल तेरी हो या मेरी, लेकिन भूल तो है ही। ध्यान देने की बात है कि कवि ने पहले पद में 'पसारें आप आँचल' कहा था। वहाँ 'आप' का संबोधन था जबकि यहाँ 'तेरी–मेरी' का प्रयोग है। अर्थात, इस पद की वक्ता प्रथम पद के वक्ता की तुलना में चाहे आयु में हो, सामाजिक पद–प्रतिष्ठा अथवा अनुभव में हो, उसकी स्थिति बड़ी है। यह भूल कहीं से भी जन्मी हो लेकिन यह एक भूल ही है। इसे भुला देना ही श्रेयस्कर है। इसे आँचल में भरना भूल है। इस भार को वहन करते हुए यानी इस भाव का वजन ढोते हुए मरना ठीक नहीं है।

यह हृदय के अंतस्थल से उत्पन्न है। यदि आप आँचल पसार दें तो मैं इन्हें आपको सौंपकर हल्का हो जाऊँ। इसका आशय यह है कि कवि के अन्तःस्थल में भावों का उद्वेलन होने के पश्चात रचना प्रसूत होती है। प्रेम के आँचल में सौंपने से कवि अपने आपको धन्य समझेगा। अपने जीवन को कृतार्थ मानेगा। पुनः कवि का सवाल है कि आख़िरकार इससे होता भी क्या है?

ये कमल के फूल ———————— कमल के फूल हैं।

इन पंक्तियों में कवि स्पष्टता के साथ कहता है कि वह कमल के फूल मानसरोवर के किनारे से नहीं बल्कि उसके बीच से लेकर आया है। किनारा मन की चंचलता का प्रतीक है जबकि बीच सरोवर का आशय अत्यंत गंभीरता है। किनारे से फूल तोड़ कर लाने और बीच सरोवर से फूल लेकर आने में बड़ा अंतर होता है। बीच सरोवर से फूल लाने का मतलब अधिक श्रम और संघर्ष करना है। पुनः किनारे के फूल अछूते नहीं रहते जबकि बीच सरोवर के फूल अछूते होते हैं। हृदय की अतल गहराई और मन की कोर से उत्पन्न भावों को मैं लेकर आया हूँ। यह आकर्षण मात्र नहीं है। यदि यह भूल भी है तो निश्छल है। पवित्र भावों से उत्पन्न है बिल्कुल अछूती है।

इस कविता में पुरुष अपने भावों को प्रकट कर रहा है और स्त्री चाहे सामाजिक पद–प्रतिष्ठा के चलते हो अथवा सामाजिक वर्जनाओं के कारण, पुरुष के प्रेम निवेदन को तत्काल स्वीकार नहीं कर रहा है जबकि उसके मन में भी प्रेम के भाव मौजूद हैं। लेकिन वह उतनी गंभीरता से उसे नहीं समझ रही है या ले नहीं पा रही है। इस दृष्टि से यह कविता प्रेम का भारतीय स्वरूप प्रस्तुत करती है।

कवि की यह राग भावना उनकी कविताओं की केंद्रीय विशेषता है। उनका हृदय अत्यंत स्नेहशील और अनुराग पूर्ण है। उनका यह अनुराग जड़ और चेतन तथा मानव और प्रकृति के प्रति समान रूप से है। एक और तो वे मानवतावादी और मानवमात्र के प्रेमी हैं और दूसरी और प्रकृति का सौंदर्य उन्हें इतना प्रिय है कि वह उन्हें आत्मसात सा कर लेता है।

17.3.5 'कहीं नहीं बचे' कविता का वाचन और विश्लेषण

कहीं नहीं बचे

हरे वृक्ष

न ठीक सागर बचे हैं

न ठीक नदियाँ

पहाड़ उदास हैं

और झरने लगभग चुप

आँखों में

घिरता है अंधेरा घुप

दिन दहाड़े यों

जैसे बदल गई हो

तलघर में

दुनिया

कहीं नहीं बचे

ठीक हरे वृक्ष

कहीं नहीं बचा

ठीक चमकता सूरज

चाँदनी उछालता

चाँद

स्निग्धता बिखेरते

तारे

काहे के सहारे खड़े
कभी की
उत्साहवंत सदियाँ
इसलिए चली
जा रही हैं वे
सिर झुकाये
हरेपन से हीन
सूखेपन की ओर
पंछियों के
आसमान में
चक्कर काटते दल
नजर नहीं आते
क्योंकि
बनाते थे
वे जिन पर घोंसले
वे वृक्ष
कट चुके हैं
क्या जाने
अधूरे और बंजर हम
अब और
किस बात के लिए रूके हैं
ऊबते कयों नहीं हैं
इस तरंगहीनता
और सूखेपन से
उठते कयों नहीं हैं यों
कि भर दें फिर से
धरती को
ठीक निर्झरों
नदियों पहाड़ों

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

वन से !

———

'कहीं नहीं बचे' शीर्षक कविता मशीनीकरण के दौर में प्राकृतिक विनाश और मानव जीवन पर पड़नेवाले उसके दुष्प्रभावों का चित्रण है। इसमें कवि का प्रकृति के प्रति आत्मीय भाव और तादात्म्य का भी परिचय मिलता है। भवानी भाई की कविताओं में सतपुड़ा का जंगल हो या नर्मदा के बहाने उनके प्रकृति के प्रति अनन्य प्रेम परिलक्षित होता है। दिनोदिन ठूंठ होती प्रकृति को देखकर उनके हृदय की व्यथा भी यहाँ व्यंजित होती है। कवि की पर्यावरणीय चिंता का उजागर भी सुंदर ढंग से हुआ है। आइए, इस कविता की व्याख्या के माध्यम से कवि की चिंता और चेतना से रु–ब–रु होते हैं।

व्याख्या :

कहीं नहीं बचे ———————— काहे के सहारे खड़े ।

इन पंक्तियों में भवानी प्रसाद मिश्र ने प्रकृति और पर्यावरण के समक्ष आनेवाली चुनौतियों और मानव जीवन के आसन्न संकटों पर चिंता व्यक्त की है। विकास के नाम पर हमारे जंगल काटे जा रहे हैं। हरे–भरे पेड़ों का सफाया हो रहा है। हरियाली ख़त्म होती जा रही है। पहाड़, नदी और समुद्र तो हैं लेकिन नाम के वास्ते। 'ठीक से बचे नहीं'। आशय यह है कि पहाड़ों की शोभा है उसके पेड़–पौधे, लता–गुल्म। लेकिन जो पहाड़ अब दिखाई पड़ते हैं बस वे नंगे ही हैं। छोटी नदियाँ नाले में तब्दील हो रही हैं और बड़ी नदियाँ शहर की गंदगी, मिलों और कारख़ानों, उद्योगों के कचड़ों को अपनी धारा में ढोते –ढोते इतनी प्रदूषित हो गई हैं कि उनका पानी पीने लायक नहीं रह गया है। समुद्र में फैलते प्रदूषणों के बारे में जानना हो तो किसी भी समुद्री तट पर जाकर उसका हाल देख सकते हैं। पहाड़ अपनी मौजूदा हालात से उदास हैं और उनसे निकलने वाले झरने लगभग ख़ामोश हैं क्योंकि पर्यावरण में इतना बदलाव आ गया है कि तेज गति से उछल–कूद मचाने वाले सोते दिखाई ही नहीं पड़ते। पर्यावरण असंतुलन के कारण दिन–दहाड़े घुप्प अंधकार छा जाता है। यह इसलिए कि प्रकृति की स्वाभाविक गति को मानवकृत प्रदूषण निरंतर बाधा पहुँचा रही है। मानो पूरी दुनिया में बदलाव आ गया हो। हरे–भरे वृक्षों के अभाव में समय से बारिश नहीं होती है। प्रकृति का अत्यधिक दोहन हो रहा है। फलस्वरूप, जिस अनुपात में हरे–भरे पेड़ और हरियाली आवश्यक है उसका अभाव परिलक्षित होता है। प्रकृति की इस शोचनीय दशा में प्रकृति की निश्चित दिनचर्या बाधित हो रही है। सूर्य की रौशनी, चंद्रमा की चाँदनी और तारों की स्निग्धता भला किसके सहारे रहें?

उत्साहवंत सदियाँ ———————— नदियाँ पहाड़ी वन सी

सदियों से प्रकृति अपने नियमों से चलती आ रही थी। परिवेश की गति और प्रकृति को नियंत्रित करने के प्रयास में मनुष्य प्रकृति पर और अंततः अपना विनाश करना शुरू कर दिया है। जो सदियाँ उत्साह से भरपूर थीं मानो अब की विनाश लीला के कारण सिर झुकाए हरेपन से सूखेपन की ओर चली जा रही हैं। हरापन खुशी का और सूखापन दुःख का प्रतीक है। पेड़ कट जाने के कारण पक्षी आकाश में पंक्तिबद्ध हो उड़ते नजर नहीं आते हैं। वे अपने लिए जिन पेड़ों पर घोंसले बनाते उन्हें कभी विकास के नाम पर तो कभी सभ्यता के नाम पर काटा जा चुका है। इतना सब कुछ होने पर भी प्रकृति के प्रति हमारी निर्ममता और असंवेदनशीलता में कोई कमी नहीं आ रही है। आख़िर हम कब समझेंगे कि प्रकृति बचेगी तो हम बचे रहेंगे। हम अपनी संहारकारी आदतों से कब बाज आएँगे? अब कितना विनाश देखना चाहते हैं हम? निरंतर प्रकृति के साथ छेड –छाड के कारण कभी सूखा तो कभी बाढ़ का प्रकोप सहना पड़ रहा है। कितने लोग, मानवेतर प्राणी,

जन–धन का नाश हो रहा है। आख़िर हम कब खड़े होंगे प्रकृति और पर्यावरण को स्वस्थ बनाने के लिए ताकि पेड़ों में हरापन को बचाए जा सके। धरती को 'ठीक निर्झरों, नदियों, पहाड़ों से भरने के सही संकल्प को क्रियान्वित किए बिना प्रकृति, मानव जाति और मानवेतर प्राणी को बचाना असंभव होगा।

इस कविता में प्रकृति और पर्यावरण के संरक्षण और संवर्धन हेतु कवि का आग्रह रहा है। कविता के प्रथमार्ध में कवि की स्वाभाविक क्षीण निराशा का भाव व्यंजित हुआ है। लेकिन उत्तरार्ध में वह पर्यावरण को प्रदूषण से बचाने और उसकी आवश्यकता पर महत्व दिया है। दरअसल पूरे विश्व की सर्वाधिक प्रमुख समस्या के बारे में कवि ने हमें सचेत कराना चाहा है। हम बहुत अधिक खो चुके हैं, अगर अब भी सचेत और जागरूक नहीं हुए तो हमारा अस्तित्व संकटग्रस्त होगा। कवि की चिंता अत्यंत सहज रूप में संप्रेषित हुई है।

बोध प्रश्न–1

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

1. 'नदी के द्वीप' कविता में निहित प्रतीकात्मकता को स्पष्ट कीजिए।

   .....
   .....
   .....

2. द्वीप अपना अस्तित्व बनाए रखना क्यों चाहते हैं?

   .....
   .....
   .....

3. 'यह दीप अकेला' कविता के आधार पर कवि की मूल संवेदना पर प्रकाश डालिए।

   .....
   .....
   .....

4. कवि ने किस प्रकार के दीप को पंक्ति में देने का आग्रह किया है और क्यों?

   .....
   .....
   .....

5. कवि अपनी प्रेयसी को किन नए उपमानों से उपमित करना चाहता है और क्यों? अपने भाषा–शैली में उत्तर लिखिए।

   .....
   .....
   .....

6. सम्राज्ञी का बिना फूल के आराध्यदेव के दर्शन हेतु आने के कारण बताइए।

   .....
   .....
   .....

7. कवि अज्ञेय की कविताओं की मूलभूत विशेषताओं पर आलोकापात कीजिए।

.....

.....

.....

8. कवि अज्ञेय की प्रकृति चेतना का सोदाहरण विवेचन कीजिए।

.....

.....

.....

9. ''गीत फरोश' में कवि की गहरी व्यथा एवं मस्ती तथा उल्लास का चित्रण हुआ है'–इस कथन पर विचार कीजिए।

.....

.....

.....

10. भवानी प्रसाद मिश्र की प्रकृति और पर्यावरणीय चिंता का सोदाहरण विवेचन कीजिए।

.....

.....

.....

11. भवानी प्रसाद मिश्र की कविताओं में निहित ग्राम–जीवन के चित्रण पर विचार कीजिए।

.....

.....

.....

12. पठित कविताओं के आधार पर भवानी प्रसाद मिश्र की भाषा–शैली पर प्रकाश डालिए।

.....

.....

.....

13. भवानी प्रसाद मिश्र की कविताओं के आधार पर उनकी जीवन–दृष्टि का परिचय दीजिए।

.....

.....

.....

14. 'सन्नाटा' कविता में निहित कवि की प्रेम चेतना पर विचार कीजिए।

.....

.....

.....

15. अज्ञेय और भवानी प्रसाद मिश्र के प्रकृति चित्रण का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।

.....

.....

.....

16. अज्ञेय और भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य–भाषा और शैली में निहित अंतर स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY